जिन के चरण कमलों में आत्मोत्सर्ग करने के व्यर्थ उद्योग में जीवन बिता रहा हूँ—जिन की इच्छा से पापी पापाचरण करके पाप सञ्चय करता और धर्मात्मा पुण्य करके पुण्यवान् होता है—जीवन की सारी व्यर्थताओं मे जिन के आश्रय का मैं भिखारी रहा हूँ—सब प्रकार से वञ्चित और प्रपीडित होने पर भी, अपने कर्म के दोष से सारे अधिकार गवाँ कर सब तरह से दीन और कङ्गाल होने पर भी जिन के नाम लेने के अधिकार से कभी कोई वञ्चित नहीं होता—उन्हीं लीलामय के चरण कमलों में अपने साहित्यिक प्रयत्न के इस प्रथम फल को अर्पण करता हूँ।

श्री शचीन्द्रनाथ

भूमिका

किसी समाज को पहचानने के लिए उस समाज के साहित्य से परिचित होने की परम आवश्यकता होती है, क्योंकि समाज के प्राणों की चेतना उस समाज के साहित्य में भी प्रतिफलित हुआ करती है। आज भारत जो बनाने और मिटाने के बीच क्रमशः अपनी सार्थकता को खोजता फिरता है, सो भारत का समाज यदि सजीव होगा तो भारत के प्राणों की इस अशान्ति का चित्र उसके साहित्य में अवश्य ही अपने प्रतिबिम्ब को अङ्कित कर देगा। हम भारतवासी आज यह नहीं जानते कि इस अशान्त अटूट गति का वेग कितना प्रचण्ड है किन्तु हमारे पश्चात् आने वाली पीढ़ी इस गति के वेग को बखूबी बतला सकेगी। भारत के इस बनाने-मिटाने के उद्योग के बीच जितनी बड़ी शक्ति का स्फुरण हो रहा है उसके स्वरूप को जानने का समय शायद अभी आया नहीं। इस बनाव-बिगाड़ का एक चित्र—भले ही वह अस्पष्ट और मलिन हो—भारत की इस भाग्य-परीक्षा की एक धुन्धली सी छाया, आज भारत के साहित्य में भी धीरे धीरे प्रकट हो रही है। इसी से "निर्वासन-काहिनी," "कारा-काहिनी," "द्वीपान्तरेर कथा," "निर्वासितेर आत्म-कथा," और "बाङ्गलाय विप्लव-वाद" आदि ग्रन्थ वङ्ग भाषा के साहित्य में क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। भारत के प्राण आज जैसे कुछ छटपटा रहे हैं, उस छटपटाहट-अशान्ति का पूरा स्वरूप उसके साहित्य में प्रकाशित नहीं हो सका; अभी नहीं हुआ तो न सही, क्रमशः आगे होगा। "निर्वासितेर आत्म-कथा" इत्यादि पुस्तकें जिस

श्रेणी की हैं उस श्रेणी के अन्तर्गत मेरा "बन्दी जीवन" भी है। इस श्रेणी की कई पुस्तकें जब पहले से मौजूद थीं तब फिर यह "बन्दी-जीवन" मैंने क्यो लिखा। इसका विशेष कारण सुन लीजिए।

(१) मुझे यह कहना है कि सजीव जातियों में छानबीन करने की प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है। इस जाँच पड़ताल करने की की प्रवृत्ति के कारण ही सजीव जातियां अपने समाज के रत्ती रत्ती समाचार के लिए चौकन्नी रहती हैं। शायद एक देहाती के बेदाग् वंश-वृक्ष का पेड़-पत्ता जानने में किसी ने अपनी सारी उम्र इस आशा से बिता दी कि इस प्रकार तथ्य संग्रह कर देने से कदाचित् किसी दिन वंशानुक्रम की धारा का पता लगाने में सुभीता हो जाय। भारत के वर्तमान समाज की भीतरी वेदना का परिचय, परिमाण और कारण जानने का समय क्या अभी तक उपस्थित नहीं हुआ? उस भीतरी वेदना—दर्दे दिल—को हटा देने की इच्छा से भारत में जो अभिनव आन्दोलन आरम्भ हुआ है वह आन्दोलन कितना व्यापक और गम्भीर है, कहां कहां पर उस में कोर कसर और भूल चूक रह गई है, वह आन्दोलन किस परिमाण में सार्थक हुआ और कितना अपूर्ण रह गया है तथा उस में यह अनूरापन क्यों रह गया है—इन सारी बातों का जान लेना क्या प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य नहीं? इन सारी बातों को जानने के लिए उस ढंग की बहुतेरी पुस्तकों के प्रकाशित होने की आवश्यकता है जिस ढ़ंग का कि 'बन्दी-जीवन" है। ऐसी ऐसी जितनी पुस्तकें प्रकाशित होंगी मुख्य विषय को समझना उतना ही आसान हो जायगा।

(२) मेरा वक्तव्य यह है कि "कारा-काहिनी" के ढंग की जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उन में अरविन्द बाबू की "कारा-काहिनी" और बाबू नलिनीकिशोर-लिखित "बाङ्गलाय विप्लव-वाद" नामक पुस्तकें मुझे सर्वश्रेष्ठ जँचीं। हां अरविन्द, बाबू ने सिर्फ़ कलकत्ते के कारागार की ही कथा लिखी है; और मैं चाहता हूं कि लाहौर, बनारस, कलकत्ता और अन्दमान की बातें इसी ढ़ंग से लिखूँ तथा इस सिलसिले में पँजाब, युक्त-प्रदेश, बङ्गाल और अंगरेज शासित भारत के अन्यान्य प्रदेशों के मानव-चरित्र की भी थोड़ी बहुत चर्चा करूँ। सच पूछो तो 'बाङ्गलाय विप्लव-वाद' के लेखक ने वे बातें मेरी अपेक्षा कहीं अच्छे ढ़ंग से प्रकट कर दी हैं जो कि मुझे कहनी हैं; भाषा पर यद्यपि मेरा उनकी भाँति अधिकार नहीं है; फिर भी अभी तक बहुतेसी बातें प्रकट करने को रह गई हैं; बङ्गाल की बातों का वर्णन करते समय मैं उनकी चर्चा करना चाहता हूँ। मैं बखूबी जानता हूँ कि भाषा के हिसाब से मैं सुन्दर नहीं लिख सका; और इस दृष्टि से तो उपेन्द्र बाबू की पुस्तक के साथ किसी की भी पुस्तक टक्कर लेने योग्य नहीं। ताना देने और मजाक करने की ऐसी कुशलता बङ्गाल में कदाचित् ही किसी और लेखक में हो। उपेन्द्र बाबू निस्सन्देह बङ्गाल के शक्तिशाली लेखक हैं। किन्तु उन की "आत्म-कथा" में बहुत ही गुरुतर विषयों की आलोचना भी बिल्कुल साधारण रीति पर की गई है। मानो उन का उसी में कौतुक है। इसी कारण "निर्वासितेर आत्म-कथा" चित्ताकर्षक होने पर भी मर्मस्पर्शिनी नहीं हुई। और बारीन्द्र बाबू की 'द्वीपान्तरेर कथा' में जो

भाग उपेन्द्र वावू का लिखा हुआ है वही मुझे अच्छा लगा। उक्त पुस्तक का आधे से भी अधिक अश उपेन्द्र वावू का ही लिखा हुआ है। वावू वारीन्द्रकुमार घोष ने यद्यपि पहले ही लिख दिया है कि 'यह दो मुहों की ही एक वात है" किन्तु यह सभी की समझ में आजाता है कि यह दो मुहों की साफ साफ अलग वातें हैं। वारीन्द्र वावू के लिखे हुए अश मे, वीच वीच में यद्यपि खासा कवित्व है तथापि सच तो यह है कि उसमें भी विप्लव वादियों की मर्म कथा प्रकट नहीं हुई। इसके सिवा इस द्वीपान्तर की कथा की वहुतेरी वातें आसानी से दवा दी गई हैं। ऐसा क्यों हुआ है, इस का विचार यथास्थान करने की इच्छा है।

"वन्दी जीवन' के इस खण्ड में यही लिखने की चेष्टा की गई है कि यूरप के महायुद्ध के समय भारत मे क्रान्ति की कैसी क्या तैयारी की गई थी। रौलट रिपोर्ट में यद्यपि यह पहलू विल्कुल ही छिपा दिया गया है तथापि टाइम्स हिस्ट्री आव् दी ग्रेट वार (Time's History of the Great War, volume dealing with India) नाम की पुस्तक में भी इस का थोडा सा उल्लेख आ गया है। माना कि क्रान्ति की इस तैयारी का उपयोग नहीं किया जा सका, फिर भी सफलता या विफलता के दृष्टिकोण से इसका फैसला करना ठीक नहीं। पितामह भीष्म का महत् चरित्र क्या कुरुक्षेत्र के महा सग्राम में उनकी हार जीत पर अवलम्बित है?

इस पुस्तक के दूसरे खण्ड में यह वतलाने की इच्छा है कि युद्ध छिडने से प्रथम भारतीय विप्लववादियो की क्या दशा

थी और उनके मन की गति ने किस किस प्रकार आघात लगने में कैसा क्या भाव धारण किया था। इस के पश्चात् मेरे फरार हो जाने की दशा का; फिर गिरफ्तार होने और मुकदमा चलने एवं बन्दी-जीवन के वर्णन करने का विचार है। मेरी गिरफ्तारी हो जाने के बाद भी भारत में और बर्मा में जिस प्रकार षड्यन्त्र किया जा रहा था उसका भी वर्णन करने का इरादा है।

सुना है कि बारीन्द्र कुमार के साथी उल्लासकर दत्त अन्दमान टापू में कहते थे "कि बड़े सख्त लोगों से काम पड़ा है, ये हाड़ और माँस तो खायँगे ही. इसके सिवा चमड़ी से डुगडुगी मढ़ कर बजावेंगे।" ऐसे सख्त लोगों के हाथ से मुझे कैसे छुटकारा मिला था, इसका भी अंत में वर्णन करने की अभिलाषा है। जीवन में तरह तरह की चोटें लगने से अंत में मन की क्या दशा हुई, उस को एक बात में न कहकर क्रमशः स्पष्ट करने की चेष्टा की जायगी। मैं तो अब तक समझता हूँ कि यह पुस्तक तीन खण्डों में समाप्त होगी किंतु "गृह-कारज नाना जञ्जाला" में पड़कर नहीं कह सकता कि कितना लिख सकूंगा। इस द्विविधा का कारण यही है कि अभी तक मैं किसी काम को निर्विघ्न पूर्ण नहीं कर सका।

२५ अगस्त १९२२
कलकत्ता

श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल

निवेदन

आज भूतकाल की बातें लिखने बैठा हूं। वह समय आज बहुत ही महिमामय जान पड़ता है। जान पड़ता है कि जिस प्रकार समय अनन्त है उसी प्रकार उस की महिमा भी अनन्त-अपार है। ऐसा जँचता है कि समय मानो उसे सुन्दर बना देता है जो कि सुन्दर नहीं है, वह असङ्गति में भी सङ्गति मिला देता है; बेढ़ङ्गी नहीं रहने देता। समय की महिमा विचित्र है, उस की कृपा से अप्रिय की स्मृति भी प्रिय हो जाती है।

असल में अतीत—गुजरे हुए—की स्मृति बड़ी मीठी होती है, वह वीणा के तार के सोये हुए झङ्कार की तरह आघात करते ही मधुर भाव से झङ्कार करने लगती है।

कई बार पिछली बातों की याद दुख भी कम नहीं देती। किन्तु उस दुख दर्द के बीच भी मानो सुख रहता है। उस समय चित्त का मर्मस्थल तक खुल जाता है। उस अवसर पर अपने आप के साथ बिलकुल निर्जन में, बहुत ही गुप्त रूप से, बात चीत होती है।

आशा और निराशा, सुख और दुख, मानो ज़िन्दगी भर हमारे साथ खिलवाड़ करते हैं; किन्तु लगातार बहुत दिनों तक इनमें कोई नहीं टिकता। सभी दो दिन दर्शन देकर--हँसा कर या रुला कर--चले जाते हैं, सिर्फ उनकी याद रह जाती है।

स्मृति पट पर बहुतेरी बड़ी चीजें छोटी हो जाती हैं और

छोटी चीजें बड़ा रूप धारण कर लेती हैं—कुछ चीजें ऐसी भी हैं जो मन में ऐसी जा छिपती हैं कि फिर उनको ढूढ़ निकालना कठिन होजाता है।

बनारस षड्यन्त्र में मुझे सजा हुई थी। सन् १९१५ की २६वीं जून को मैं गिरफ्तार हुआ और १४ फरवरी-सन् १९१६ को आजन्म कालेपानी की तथा सारी सम्पत्ति जप्त होने का दण्ड मिला। इसके अनन्तर कुछ दिन तक तो काशी के कारागार में ही रहा, फिर अगस्त महीने में अन्दमान द्वीप को रवाना कर दिया गया। अगस्त की १८वीं तारीख को मैं उस द्वीप के जेलखाने में दाखिल किया गया। फिर इच्छामय की इच्छा के अनुसार फरवरी सन् १९२० मे सम्राट् के घोषणापत्र के कारण रिहा किया गया।

बस, सन् १५ से लेकर सन् २० के आरम्भ तक मेरा बंदी जीवन रहा। इस 'बंदी जीवन' का अवलम्ब ग्रहण करके मैं बतलाना चाहता हूँ कि आखिर मैं क्यों कैद कर लिया गया था। यह पुस्तक आज मैं इस लिए लिख रहा हूँ जिसमें कि भारत के भविष्यत् इतिहास के कुछ अध्याय ठीक ठीक लिखे जा सकें।

भारत का भाग्य एक महान् युग सन्धि के बीच होकर दौड़ता जा रहा है। भारत के भीतर और बाहर क्रान्ति की भयङ्कर आग, भगवान् की गुप्त प्रेरणा से अपने निर्दिष्ट मार्ग पर—और वह भी मानो अपने किए अनुकूल बवंडर बना कर—फैलती जा रही हैं, ऐसे ही एक बवंडर में उसी विधाता की मर्ज़ी से मैं भी पड़ गया था।

मेरी ही तरह और भी कुछ युवा पुरुष, अपने मर्मस्थल की व्यक्त वेदना से अधीर होकर, जान बूझ कर या वे-समझे बूझे विधाता का अभीष्ट सिद्ध करने के लिए ही दलवद्ध होगये थे। मुद्दत से मैं चाहता था कि उस दल के भीतरी परिचय का, जो कि काम काज के बाहरी आडम्बर में छिप गया था, एक संक्षिप्त इतिहास लिखूँ। आज उसी वासना को चरितार्थ करने की चेष्टा करता हूँ।

हम लोग अक्सर घटना को ही महत्व दे देते हैं—उसी को बड़े आकार मे देखते हैं; किन्तु यह नहीं समझते कि घटना की ओट में—फिर वह घटना कितनी ही क्षुद्र क्यों न हो—महाशक्ति की लीला रहती है, और वही असल में घटना की अपेक्षा बहुत मूल्यवान् होती है। सफलता का मोह हम लोगों को प्रति पद पर घेरता है। विचार के द्वारा उस मोह का छेदन हो जाने पर भी प्राण उस मोहावेश को काट कर अलग कर देने मे समर्थ नहीं होते। किन्तु बड़ी बड़ी घटनाओं के मुकाबिले मे जीवन को बिताने की मामूली बातें भी कुछ कम महत्व की नहीं होतीं। घटनाओं का आरम्भ विचार-जगत् में ही हुआ करता है।

इस उपलक्ष्य में व्यक्तिगत चरित्र की आलोचना रहने पर भी वह व्यक्तिगत रूप में न की जायगी। व्यक्ति का परिचय हुए बिना समष्टि से परिचय नहीं हो सकता। इसलिए तो व्यक्तिगत चरित्र की आलोचना आवश्यक होती है।

यह परिचय देने में अपने और अपने दल के बहुतेरे छिद्र प्रकट हो जायँगे। तो इस लिए क्या मैं उन दुर्बलताओं और

संकीर्णताओं को छिपाने की व्यर्थ चेष्टा करूँगा जिन्हों ने कि हमें भीतर ही भीतर पंगु बना दिया है ? ऐसी चेष्टा व्यर्थ तो होगी ही; क्योंकि एक न एक दिन सत्य प्रकट होगा और जरूर होगा, और छिपाने का उद्योग करने से न सिर्फ सत्य ही का अपलाप होगा किन्तु उससे तो हमारा पंगुत्व—निकम्मापन—और भी बढ़ जायगा। इतिहास के पृष्ठों में 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्'' सार्थक नहीं।

श्री रासबिहारी

श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल

बन्दी-जीवन

पहला परिच्छेद

आत्म-समर्पण योग

कलकत्ते के राजाबाजार मुहल्ले में एक छोटा सा दो-मंजिला खपरैल का मकान था। गरीबों का सा घर जँचता था। इसमें ट्राम-कंडक्टर या इसी श्रेणी के लोग रहते थे। इसी मकान के ऊपर वाले एक कमरे में श्री शशाङ्क मोहन हाजरा नामक एक युवा पुरुष रहते थे। जिस समय वे गिरफ्तार किये गये उस समय उन के कमरे में बम के ऊपरी खोल मिले और ऐसे लेख भी बरामद हुए जिनमें योगाभ्यास की विधि थी। अदालत में मुकदमा चलते समय किसी किसी ने इन लेखों को महत्वपूर्ण नहीं समझा, कहा कि ये लेख असल में लोगों को फँसाने के लिए हैं। लोगों को गुमराह करने का यह एक ज़रिया है। लेकिन मैं जानता हूँ कि असल में यह बात न थी। हम लोगों ने सचमुच अपने जीवन में इस साधन (योगाभ्यास) को ग्रहण किया था।

हम लोग सिर्फ मुँह से ही न कहते थे कि भगवान् सभी कामों के नियन्ता हैं, बल्कि सचमुच हृदय से गम्भीर श्रद्धा के साथ उल्लिखित बात पर विश्वास करते थे। अपनी गरज़ के लिए, अपना काम साधने के लिए ही कुछ भगवान् को न घसीटते थे, किन्तु भगवान् के अधिनायकत्व की आलोचना और भावना में कितने ही दिन और रात्रियाँ तक विताई हैं।

भारत की छाती पर जो यह महान् आन्दोलन हो चुका और हो रहा है, यह उन्हीं की इच्छा से हुआ और हो रहा है; हम लोगों का यही विश्वास है। जिस भाव की अव्यर्थ प्रेरणा से भारत के सैकड़ों नवयुवक मृत्यु को सहर्ष चुनौती देकर वड़ी वड़ी कठिन विपत्तियों के मुख में भी वड़ी आन वान के साथ कूदे थे, और जिस प्रेरणा के बल से उन्होंने अपार दुःखों और लाँछना को पक्के संयमी की भाँति सहन किया था, उस भाव के प्लावन को क्या कोई विशेष व्यक्ति उपस्थित कर सकता है? या इसका स्थायित्व किसी व्यक्ति विशेष के मत, अथवा जीवन-मरण पर अवलम्वित है?

जब मैं निरा बच्चा था तभी से मेरे हृदय में स्वदेश के उद्धार करने का सङ्कल्प जागृत रहता था। यह सङ्कल्प मुझे किसी से प्राप्त नहीं हुआ। उस छोटी सी ही उम्र में किस ने मेरे रोम रोम में इस सङ्कल्प को भर दिया था? वचपन से ही मैं इस विषय की आलोचना अपने छोटे भाइयों से करता आता हूँ। उस समय तो स्वदेशी आन्दोलन भी उपस्थित न हुआ था। यह कुछ एक मेरे ही मन की दशा न थी। वयस्क होने पर जब मैंने और और लोगों से वात

चीत की तब मुझे पता लगा कि मेरे जैसे और भी बहुतेरे लोग देश में विद्यमान हैं। मुझे तो यह जंचता है कि भगवान् अपने अभीष्ट को सिद्ध करने के लिए पहले ही से तैयारी करते आ रहे हैं।

हम ने जो आध्यात्मिक साधना ग्रहण की थी, एक शब्द में उसे आत्म-समर्पण योग कहा जा सकता है। भक्ति योग अथवा प्रेम साधन से इस का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मैं भगवान् को प्यार करता हूं, इतना प्यार करता हूं कि उस के सिवा अन्य किसी वस्तु को अपना नहीं कह सकता। मैं जो कुछ करता हूं, वास्तव में वह मैं स्वयं नहीं करता, मैं तो केवल निमित्त मात्र हूं, भगवान् स्वयं मेरे द्वारा उन कार्यों को सम्पन्न करते हैं। वेदान्त में इस मत का पर्याप्त पोषण किया गया है। जगत् में शक्ति एक ही है, अतएव जो कुछ इस संसार में होता है सब उस शक्ति का ही खेल है। परन्तु जगत् को हम माया नहीं समझते वरन् उस भगवान् की लीला मानते हैं। हम ने निज जीवन में, देश में तथा जगत् में उसी एक शक्ति की लीला देखने तथा अनुभव करने की चेष्टा की थी।

दूसरा परिच्छेद

पूर्व परिचय

१९०६-१९०७ ईस्वी में बंगाल में जो क्रान्ति की लहर चल रही थी वह बंगाल तक ही सीमित न रही। कुछ बंगाल के अनुकरण में और कुछ बंगाल की प्रेरणा से इस समय भारत में कई स्थानों पर विप्लव केन्द्र स्थापित हो गये थे। इसी के फल स्वरूप काशी, दिल्ली और लाहौर में विप्लव केन्द्रों की सृष्टि हुई।

मैं दिल्ली बम केस के बाद से ही कहानी आरम्भ करूँगा। उस से पूर्व बंगाल के बाहर क्रान्तिकारियों ने जो कार्य किये, जन-साधारण को उस का कुछ ज्ञान न था। दिल्ली षड्यन्त्र के मुकदमे में लाला हरदयाल और श्री रासबिहारी बसु के नाम विख्यात हुए। लाला हरदयाल उस समय अमेरिका में थे किन्तु रासबिहारी घोर संकट के समय में भी १९१५ तक भारत में ही रहे। वे बंगाल के बाहर के क्रान्तिकारी दल के नेता थे। उन को साधारणतः हम, दादा या रासूदा बोलते थे।

दिल्ली षड्यन्त्र के मुकदमे के आरम्भ होने के पहले से ही रासबिहारी फरार हो चुके थे। उन को पकड़ने के लिए कई पुरस्कारों की घोषणा हो चुकी थी। प्रत्येक बड़े रेलवे स्टेशन पर उन का फोटो टांगा गया था; उन को पकड़वाने का कितना पुरस्कार दिया जायगा इस का भी साथ ही उल्लेख कर दिया गया था। किन्तु पूरा प्रयत्न करने पर भी सरकार उन को किसी तरह पकड़ न सकी।

कई स्थानों में घूम कर अन्त में रासबिहारी ने काशी में रहना स्थिर किया। वे काशी में मेरे साथ प्रायः एक वर्ष तक रहे उस समय उन के संसर्ग से मैंने जो आनन्द पाया था उसे मैं भूल नहीं सकता। इतने अरसे में मैंने उन को शायद कभी भी दुखी नहीं देखा। हां, जिस दिन दिल्ली षड्यन्त्र के मुक़दमे के फैसले के अनुसार चार व्यक्तियों को फांसी का हुक्म हुआ उस दिन एकान्त में उन को अश्रुपात करते देखा था।

रासूदा जितने दिन काशी में रहे उतने दिन भारतवर्ष के भिन्न भिन्न स्थानों के लोगों को उन से मिलते देखा था। राजपूताना पंजाब और दिल्ली से लेकर सुदूर पूर्व बंगाल तक के लोग उन के पास आते थे। वे जब तक काशी में रहे तब तक युक्तप्रदेश तथा पंजाब के भिन्न भिन्न स्थानों में विप्लव केन्द्रों की स्थापना में लगे रहे। उसी का यह परिणाम हुआ कि एक ही वर्ष में हमारा दल पर्याप्त शक्तिशाली हो गया और उसी का यह फल था कि योरोपीय महायुद्ध जब प्रारम्भ हुआ तब हम खूब जोर से काम कर सके थे।

सन् १९१५ भारत में चिरस्मरणीय रहेगा। इस साल विप्लव की जितनी बड़ी तैयारी अकारथ गई उतनी बड़ी तैयारी सन् ५७ के गदर के पश्चात्, पंजाब में कूका-विद्रोह के सिवा और हुई कि नहीं इसमें सन्देह है। इस षड्यन्त्र-कारी दल के गिरफ्तार हो जाने पर "भारत-रक्षा" कानून गढ़ा गया था। उस समय के होम-मेम्बर क्रैडक साहब ने, भारतीय व्यवस्थापिका सभा में उक्त कानून का प्रस्ताव उपस्थित करते समय जो वक्तृता दी थी उस में कहा था —"We had

had anarchism for a long time in Bengal, but the situation in the Punjab was serious, in Bengal it was less so" उस समय सचमुच भारत की दशा बहुत ही नाज़ुक हो गई थी। हां, बङ्गाल के सम्बन्ध में क्रैडक साहब की अभिज्ञता उस समय बहुत ही कम थी। कुछ दिन के पश्चात् उक्त साहब ने स्वीकार किया था कि पजाब के विप्लव कारियों के साथ बङ्गाल के विप्लवपन्थी दल के सम्बन्ध-सूत्र में सरकार की पहले जो धारणा थी उस में परिवर्तन होगया है।

उत्तर भारत के विप्लव सम्बन्धी कई मुकदमों में बहुतेरी बातें प्रकट हो चुकी हैं। बहुत लोग समझते हैं कि इन बातों में सचाई कम है। बहुतों ने मुझ से कहा भी था कि "पुलिस ने अपना दिमाग़ लडा कर झूठा मुकदमा बना कर खडा कर दिया है वास्तव में वैसा कुछ देश मे किया ही नहीं गया है।" ऐसे लोगों की बातें सुनने से मैं दिल में जल भुन जाता था। सोचता था कि देश वासियों का आत्म-शक्ति-ज्ञान यहा तक लुप्त हो गया है वे यह समझ नही सकते कि उन के स्वजातियों में ऐसा कुछ करने की सामर्थ्य है। किन्तु अन्दर की असहिष्णुता के कारण मन की बातें खुल कर न कह सकता था। इस स जलन और भी अधिक होती थी। ❀ 'कोमागाता मारू'

❀ इस स्थान में पुलिस के कार्यों के सम्बन्ध में दो चार और बातें कह देना उचित है। ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे कोई सज्जन यह न समझ लें कि पुलिस जो राजनैतिक मुकदमे करती है वे सब सम्पूर्णतया सत्य होते हैं। पुलिस मुकदमे बनाने के लिए कई मिथ्या कथायें

नामक जहाज के सिक्ख यात्रियों को कैनाडा की भूमि में पैर न रखने देने के कारण उन के मन में जो आग प्रज्वलित हुई थी उस की चिनगारियां जब चारों ओर उड़ रही थीं तब, भारत के एक प्रान्त में बैठे हुए, हम लोग आशा की वेदना से चञ्चल होकर असहनशील की भांति ताक रहे थे। पंजाब में जो हमारे दल के लोग थे उन से कह दिया गया था कि 'कोमागाता मारू' के यात्री ज्यों ही देश में आवें, उन्हें फौरन दल में भरती कर लिया जाय।

किन्तु 'कोमागाता मारू' के यात्रियों के भारत की वसुन्धरा पर पैर रखते ही एक दुर्घटना होगई। हमारी आशा और भी सबल होने लगी। देखते देखते कैनाडा और कैलिफोर्निया से सिक्खों के दल के दल देश में आने लगे। ये लोग भारत को आते समय रास्ते में, स्थान स्थान पर उतर कर, पुलिस और

घढ़ती है और ऐसे ही कई बार सर्वथा निर्दोष व्यक्तियों को भी मुकदमों में फंसा देती है। काशी षड्यन्त्र में जिन पर मुकदमा चलाया गया था और जिन को सजा दी गई थी उन में से कई सर्वथा निर्दोष थे। मैं ऐसे कई राजनैतिक मुकदमों के बारे में जानता हूं जिन में अभियुक्त व्यक्ति बिलकुल निर्दोष थे। लखनऊ राजनैतिक हत्या के मुकदमे में श्रीयुत सुशीलचन्द्र लाहिड़ी को फांसी हुई थी किन्तु कइयों की सम्मति में वे वास्तविक अपराधी नहीं थे। लेखक फरवरी १९२५ में बंगाल आर्डिनैंस के अनुसार गिरफ्तार किये गए थे और ६ महीने बाद उन के विरुद्ध राजद्रोह का मामला चलाया गया था किन्तु जिन घटनाओं पर यह मुकदमा निर्भर करता था उन से उन का कोई भी सम्बन्ध नहीं था।

फौज में नियुक्त सिक्खों के बीच विप्लवाग्नि भड़का रहे थे। ये लोग बहुत दिन से भारत के बाहर परदेश में थे। इस कारण ये प्राय. यह न जानते थे कि गुप्त रूप से षड़यन्त्र किस प्रकार किया जाता है। यही कारण है कि ये लोग प्रत्येक जहाज और बन्दर मे गदर की आग फैलाते चले आ रहे थे। फल उस का यह हुआ कि भारत सरकार खूब चौकन्नी हो गई। जैसे जैसे सिक्खों के दल स्वदेश मे आकर जहाज से उतरने लगे वैसे वैसे सरकार की ओर से उन की यथारीति अभ्यर्थना होने लगी। इस प्रकार एक दल के कोई तीन सौ यात्रियों को सीधा मुलतान जेल मे भेज दिया गया। इन मे से बहुतों के पास काफी धन था इन्होंने अमरीका में लगातार कई वर्ष परिश्रम करके जो उपार्जन किया था उसे ये साथ लाये थे। उन के उस घोर परिश्रम से उपार्जित धन को सरकार ने जब्त कर लिया। बेचारों के घर वाले ताकते ही रह गये कि परदेश से दो पैसे आवेंगे तो महीने भर सुख से पेट भर भोजन कर लेंगे। इन मे से एक सिक्ख के पास कोई तीस हजार रुपये थे।

बहुतेरे ऐसे थे जो अपनी सारी गाढी कमाई कैलिफोर्निया स्थित युगान्तर आश्रम के अर्पण कर आये थे। जितने दल सरकार की तीखी नजर से बच गये थे वे पंजाब जाकर दलबद्ध होने लगे। सिक्खों के धर्ममन्दिर गुरुद्वारा कहे जाते हैं। इन में सिक्खों के पुरोहित रहते हैं। सिक्ख लोग इन्हें ग्रन्थी जी कहते हैं। प्रत्येक गुरुद्वारे मे एक ग्रन्थी जी रहता है। विप्लव पन्थी सिक्खों के सम्मिलन केन्द्र यही धर्ममन्दिर थे। मैं ऐसे ही एक गुरुद्वारे में बैठा था कि एक सिक्ख ने आकर खबर दी कि 'अमुक अमुक

व्यक्तियों को गुरुद्वारे में जाते देख मैं उन से भेंट कर आया हूं।' थोड़ी ही देर में देखा कि उस जमात के मुख्य मुख्य व्यक्ति उस गुरुद्वारे में आ गये जहां कि मैं बैठा था। रुपये पैसे की चर्चा निकलते ही उन्होंने तुरन्त सोने की गोल गोल बड़ी बड़ी चकतियां मेरे आगे रख दीं, ये अमरीका में प्रचलित सोने के सिक्के थे। हिसाब लगाने पर कोई हज़ार रुपये के हुए। प्रत्येक दल ने ऐसा वर्ताव किया था। गदर के कार्य में इन लोगों को जिस प्रकार दिल खोल कर अपनी गाढ़ी कमाई का धन दान करते देखा है वैसा दृश्य बङ्गाल में देखने को नहीं मिला। इस में सन्देह नहीं कि ऐसा उत्साह और आन्तरिकता उन्हीं सिक्खों में थी जो कि अमरीका की यात्रा कर आये थे। इस के सिवा पंजाब के अधिवासियों ने प्रायः इन लोगों के साथ सहानुभूति प्रकट नहीं की। हां, पठान और सिक्ख सैनिकों के साथ इन लोगों का विशेष हेल मेल था। इस के सिवा सिक्ख जाति में परस्पर एक दूसरे के प्रति सहानुभूति और समवेदना-जनित एकता भारत की अन्यान्य जातियों की अपेक्षा बहुत अधिक है।

जो लोग अमरीका से लौट कर आये थे उन में अधिकतर ऐसे लोग थे जो कि वहां कुलीगीरी किया करते थे। इनमें से जिन के पास से तीस हज़ार रुपए ज़ब्त कर लिए गये थे वे कैलिफोर्निया में खेती करके धनवान् हुए थे।

इन लोगों के बहुत से रिश्तेदार और भाई-बन्द भारत की फौजों में नौकर थे। देश में आते ही इन लोगों ने सैनिकों के साथ साजिश करनी शुरू कर दी। उसी समय बङ्गाल के साथ पंजाब का सम्बन्ध जुड़ गया। अनेक गुण होने पर भी इन लोगों में

सङ्गठन की वैसी योग्यता न थी जैसी कि बङ्गालवालों में थी। बङ्गाल के साथ उनका संयोग हो जाने पर बड़े अच्छे ढंग से काम होने लगा। उत्तर भारत की प्रायः सभी छावनियों में हमारे दल के आदमी आने जाने लगे। उत्तर पश्चिम अञ्चल के बन्नू से लेकर दानापुर तक कोई भी छावनी अछूती न रक्खी गई। प्रायः सभी रेजिमेंटों ने वचन दिया था कि पहले वे लोग कुछ भी न करेंगे; हाँ गदर शुरू हो जाने पर वे अवश्य ही विप्लवकर्ताओं से मिल जायेंगे। सिर्फ लाहौर और फीरोज़पुर की रेजिमेंटों ने सब से पहले काम शुरू कर देना स्वीकार किया था। आरम्भ में सरकार यह नहीं समझ सकी कि षड्यन्त्रकर्ता इतनी गहरी नींव देकर काम कर रहे हैं। यदि ऐसा न होता तो इतना अधिक काम हो ही नहीं सकता। पंजाब के पुलिस विभाग के एक मुसलमान डिप्टी सुपरिन्टैन्डेन्ट ने अपने एक मुखबिर को इस दल में शामिल कर दिया था। अन्त में उस कृपालसिंह ने ही कृपा करके सारी बातें प्रकट कर दीं।

तीसरा परिच्छेद

सिक्ख-दल का परिचय

इस दल में कृपालसिंह किस प्रकार भर्ती हो गया और उसने किस प्रकार, कब, सारी बातें प्रकट कर दीं,—इसका उल्लेख यथास्थान किया जायगा। अभी तो इस सिक्ख दल का थोड़ा सा परिचय देने की चेष्टा करता हूं।

इस दल में कुछ कम मेम्बर न थे। उत्तर अमरीका और कैनाडा से भिन्न भिन्न दलों में कोई ६-६ हजार सिक्ख देश में वापिस आये थे। किन्तु सन् १९१४ के Ingress Ordinance Act के अनुसार बहुतेरे लोग जेल में ठेल दिये गये तथा और भी बहुतेरे लोग नज़रबन्द कर दिये गये जिस से वे अपना गाँव छोड़ कर कहीं आ जा न सकते थे। जो लोग नज़रबन्द थे उन्हें विप्लव-कार्य में सहायता देने का विशेष अवसर नहीं मिला। क्योंकि सूर्यास्त और सूर्योदय के दर्मियान इन्हें अपने घर पर मौजूद रहना पड़ता था। यह इस लिए कि क्या जाने पुलिस किस समय इनकी जाँच करने पहुंच जाय। दिन निकल चुकने पर भी ये लोग अपने गाँव से बाहर न जा सकते थे। किसी दूसरे गाँव का कोई व्यक्ति भी इन से प्रकट रूप में मिल-जुल न सकता था। पीछे से जब काम अच्छे सिलसिले से होने लगा तब उन में से जिन जिन को देश का काम करने की प्रबल इच्छा हुई वे पुलिस की नज़र बचा कर खिसक गये। अर्थात् क्या

पुलिस, क्या उनके घर के लोग और क्या रिश्तेदार—किसी को उन की खबर न मिली थी।

जिस भाव को हृदय में लेकर ये दल भारत में आये थे, स्वदेश में पदार्पण करने के पश्चात् ही उन में से बहुतों का वह भाव बदल गया। अमरीका से लौटे हुए इन ६-७ हज़ार मनुष्यों में से कोई आधे लोग अपने घर-गृहस्थी के कामों में जा फँसे। किन्तु अवशिष्ट सिक्ख बड़े उत्साह के साथ विप्लव-कार्य में लगे हुए थे।

इन अमरीका से लौटे हुए लोगों में अधिकांश सिक्ख ही थे। ऐसे लोग इने गिने ही थे जो कि सिक्ख न थे। शायद २५-३० हों। वे प्रायः सब वयस्क थे। बहुतों के स्त्री परिवार और बाल बच्चे सब कुछ थे। इन में से बहुतों की उम्र ४० वर्ष से ऊपर थी। कुछ लोग तो बुड्ढे थे। भाई निधानसिंह, भाई सोहनसिंह भाई कालसिंह भाई केहरसिंह,— इन में से किसी की उम्र ५० वर्ष से कम न थी।

दिल्ली-षड्यन्त्र के मुकदमे में जो लोग गिरफ्तार हुए थे। उन में से कई एक उतरती उम्र के थे। अमीरचन्द की उम्र ५० से भी ऊपर थी। अवधविहारी भी जवानी पार कर चुके थे।

बङ्गाल का विप्लवकारी दल ही ऐसा था जिसके प्रायः सभी सदस्य छात्रश्रेणी के बालक और नवयुवक थे। इन में से अधिकांश लोगों को सांसारिक अभिज्ञता एक प्रकार से थी ही नहीं। ज्यादहतर ऐसे थे जिनकी उम्र १६ से लेकर २०-२२ वर्ष से अधिक न होगी। बङ्गाल में प्रायः यही देख पड़ता है कि जो लोग ३० के पार हुए उन का सारा उत्साह, समग्र उद्योग ठण्डा

पड़ जाता है; उस समय वे किसी तरह अपनी घर-गृहस्थी का काम चलाने के सिवा और किसी मसरफ के नहीं रह जाते। मालूम होता है कि बङ्गाल का जो कुछ आरा-भरोसा है वह मानो स्कूल और कालेज के युवकों के तरुण मनों में ही आबद्ध है। किन्तु बङ्गाल में काम करने वालों की सांसारिक अभिज्ञता स्वल्प रहने पर भी, उनमें बहुतों के तरुणवयस्क होने पर भी, उनमें एक ऐसी एकाग्र साधना देखी है जो कि बङ्गाल के बाहर अन्यत्र देखने को नहीं मिली।

बङ्गालियों ने जब जिस काम में हाथ लगाया है तब उसे प्राणों की बाज़ी लगा कर किया है। इसी से देखता हूँ कि बौद्ध युग में बङ्गालियों ने जिस प्रकार बौद्ध धर्म को अपनी नस नस में प्रविष्ट कर लिया था वैसा और किसी प्रदेश के लोगों ने नहीं किया, तथा अन्त में जब अन्यान्य प्रदेश वासियों ने बौद्ध धर्म को बिलकुल छोड़ दिया था तब वे बङ्गालियों को कुछ कुछ अवज्ञा-पूर्ण दृष्टि से देखने लग गये थे। क्योंकि बङ्गाल उस समय भी बौद्ध धर्म को पहले की भांति हृदय से चिपकाए हुए था। फिर अंगरेज़ी अमलदारी होने पर भी बङ्गालियों ने जिस प्रकार अपना सर्वस्व खोकर पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा, और आचार-व्यवहार को अपना लिया था उस प्रकार और किसी भी प्रदेश ने नहीं अपनाया। इसे बङ्गाल का गुण समझिए या दोष, किन्तु बङ्गाली जब जिसे ग्रहण करते हैं उसे प्राणपण से अङ्गीकार करते हैं। इसी कारण वर्तमान युग में भी बङ्गालियों ने जब देश-हित की ओर ध्यान दिया तब फिर वे दूसरी ओर दृष्टि नहीं डाल सके। न फिर उन्होंने शादी-ब्याह करके गृहस्थी चलाई और न

एक प्रचण्ड विवाद का श्री गणेश हो गया। बस्ती भर में सिक्ख मजदूर एक ओर हुए और दूसरी ओर हुए उस शहर के तमाम अमरीकन गोरे मजदूर। खासी मार पीट हुई, खून लाठी चली, किन्तु यह सब होने पर भी सरकार की ओर से सिक्खों पर कोई जियादती नहीं हुई। भारत में यदि कहीं ऐसी घटना हो जाती तो यह मामला न जाने कैसा रङ्ग पकड़ता। अमरीका मे लौटे हुए ये सिक्ख लोग वैसे शिक्षित न होने पर भी अपनी मातृ भाषा में लिखित ग्रन्थ आदि प्राय सभी पढ सकते थे और अपने गाव के सिक्खों की शिक्षा दीक्षा आदि के सम्बन्ध में इन्हे अत्यन्त उत्साह था। ऐसी शिक्षा के प्रचारार्थ उन अमरीकावासी मजदूर-पेशा सिक्खों ने ही अमरिका से धन सग्रह करके कई बार दस दस पन्द्रह पन्द्रह हजार की रकमें पजाव को अर्पण की थीं। अमरीका की स्वाधीन आब हवा के बीच मे रहने से और खासी आमदनी कर सकने से उन मे आत्म सम्मान मर्य्यादा और आत्म विश्वास का परिमाण बहुत कुछ बढ गया था। इन मे से कई एकों ने अमरीका मे रह कर भी अपने वेष और परिच्छद को नहीं छोडा, बहुतेरे तो अपने हाथ से रसोई बना कर भारतीय ढङ्ग पर ही आहार विहार किया करते थे। देश से जब पहले पहल ये लोग अमरीका पहुँचे तब शायद अङ्गरेजी मे एक भी बात न कह सकते थे। किन्तु वहा पहुँच कर अजीब किस्म की टूटी फूटी अङ्गरेजी बोलना इन्हों ने सीख लिया। इन के मुँह से वह टूटी फूटी अङ्गरेजी सुनने मे बडा मजा आता था। अमरीका में ऐसी ही अङ्गरेजी बोल कर ये अपनी बाते वहा वालों पर व्यक्त करते थे और उम्दा अङ्गरेजी न जानने से इन के किसी काम मे रुकावट न

पड़ती थी, और फिर इन्हों ने धन भी खासा कमाया था। किन्तु अमरीका-प्रवास के फल स्वरूप इन लोगों ने स्वदेश सम्पर्क को नहीं तोड़ दिया। करते तो थे ये अमरीका में कुलीगिरी या मजदूरी लेकिन यह जानने के लिए सदा व्यग्र रहते थे कि हमारे देश में कहां क्या हो रहा है? बङ्गाल की उस समय नवजागरण की तरङ्ग ने जिस प्रकार भारत के अन्यान्य प्रदेशों में एक भाव की हिलोर पैदा कर दी थी उसी प्रकार उस का हिलकोरा सुदूर अमरीका में स्थित भारतीयों के हृदय में भी लगा था। जब भारत के गदर की चिनगारियां धीरे धीरे चारों ओर उड़ रहीं थीं तब अमरीका में कुछ लोगों के जी ही जी में वे चिनगारियां जल रहीं थीं। इसी समय भाई कर्तारसिंह नामक एक तरुण युवा इनके साथ आकर सम्मिलित हुआ। ये उड़ीसा के रेवेनशा कालेज की प्रथम श्रेणी की-पढ़ाई समाप्त करके विशेष कारण से अमरीका चले गये थे। यद्यपि सिक्खों में ये सब से कम उम्र के थे फिर भी इनकी अधिनायकता में मैंने कितने ही बड़ी उम्र के सिक्खों को भी काम करते देखा था। इन्होंने अपने जैसे विचार रखने वाले दो एक व्यक्तियों की सहायता से एक संवादपत्र के निकालने का सङ्कल्प किया। इसी समय, पंजाब के स्वनामख्यात लाला हरदयाल भारत में विप्लव करने की सारी आशायें छोड़ छाड़ कर अमरीकन सोशलिस्टों (साम्यवादियों) के साथ आत्मीयता स्थापित करने का यत्न कर रहे थे। कर्तारसिंह और उनके मित्र इस अवसर पर हरदयाल के पास ऐसे पत्र को प्रकाशित करने का प्रस्ताव लेकर उपस्थित हुए। स्वदेश-प्रेमी हरदयाल तो ऐसे सुयोग की ताक में ही बैठे थे। अत एव उन्हों ने खुशी खुशी इस काम में हाथ लगा दिया। इस प्रकार

से "गदर" नामक विख्यात समाचार पत्र का प्रकाशन होना आरम्भ हुआ। और धीरे धीरे इसी ने "गदर" पार्टी का सङ्गठन कर दिया। कैलिफोर्निया का युगान्तर-आश्रम ही इसका केन्द्रस्थल था।

बीसवीं सदी के महाभारत के आरम्भ होने से पहले तक भारतीय विप्लव वादियों का दल समझ ही न सका था कि अङ्गरेजों के साथ जर्मनी का विरोध इतनी जल्दी उपस्थित हो जायगा। फलत इन के विप्लव की तैयारी भी इस ढंग से हो रही थी कि मानो १०-१५ वर्ष के अनन्तर वास्तविक गदर शुरु होगा। यही कारण है कि ये लोग महासमर छिड़ते समय क्रान्ति के लिए पूरे तौर पर तैयार न थे। इसके सिवा अब तक के विप्लवकारी दल के साथ भारत से बाहिरी देश के किसी भी क्रान्तिकारी दल का कहने लायक कोई सम्बन्ध ही न था। इसका फल यह हुआ कि अमरीका से क्रान्तिकारियों के जब दल के दल भारत में आने लगे तब भारत में स्थित क्रान्तिकारी लोग उनके साथ दिल खोल कर ठीक समय पर सम्मिलित नहीं हो सके, यदि सम्मिलन हो जाता तो भारत का भाग्य आज और ही प्रकार का हो गया होता।

अमरीका प्रवासी विप्लवपन्थियो की समझ मे नहीं आया था कि अँगरेजो के साथ जर्मनी का युद्ध शीघ्र ही छिड़ जायगा, इस कारण उन की तैयारी और ही ढँग पर हो रही थी। वे समझते थे कि भारत से बाहर की किसी अन्य राजशक्ति की सहायता लेकर युद्ध की तैयारी करनी होगी और इसी सङ्कल्प को कार्य मे परिणत करने के लिए बहुत कुछ आयोजन हो रहा था कि यूरप मे रणचण्डी का नृत्य होने लगा। सारा सङ्कल्प एकदम

विफल होगया। अब इन्होंने निश्चय किया कि गदर पार्टी के दल के दल भारत में पहुँच कर भारतीय सैनिकों को अपने काबू में कर लें। बस, क्रान्ति का यही एक मात्र उपाय निश्चित हो गया। हज़ारहों सिक्ख, विदेश में पड़े हुए अपने बोरिये-बँधने समेट समेट कर स्वदेश को रवाना होने लगे।

इधर भारत-सरकार को इस पार्टी की बहुत सी बातों का पता लग चुका था, क्योंकि इस पार्टी के मेम्बर लोग अमरीका में खुले खज़ाने सभाओं में, भारत में गदर करने के सम्बन्ध में व्याख्यान दिया करते थे। "गदर" नामक पत्र भी प्रकाश्य रूप में मुद्रित होता था। सन् ५७ के महाविप्लव की १० वीं मई एक उत्सव में परिणत की जाती थी। लाला हरदयाल के ऊपर अँगरेज-सरकार की विशेष उग्र दृष्टि थी। कई बार उन की डायरी तक बड़ी सफाई से उड़ा ली गई। अन्त में जब उन को गिर-फ्तार करने की सलाह हो रही थी तब एक अमरीकन ने उन्हें सावधान कर दिया। अतएव हरदयाल ने और अन्य भारतीयों ने अमरीका से हट जाने में ही भलाई सोची।

विभिन्न स्थानों के जर्मन एलची (कान्सल) उस समय भारत मे विप्लव मचा देने की इच्छा रखने वालों की अनेक प्रकार से सहायता करते थे। अमरीका प्रत्यागत दलों ने उन से मिलने-जुलने के अवसर को कभी खाली नहीं जाने दिया।

इस प्रकार कुछ व्यक्ति तो यूरप की ओर चलते हुए और जो रह गये वे भारत की ओर रवाना हुए। रास्ते में ये लोग जहाँ तहाँ अपना अभिप्राय प्रकट कर दिया करते थे। इस प्रकार का एक दल जापान के बन्दर में [illegible]चा।

मानन्द नामक एक छरहरे डील का युवा पुरुष इन लोगों में आ मिला। ये झांसी के निवासी थे। अन्दमान में इन्हें हम लोग छोटे परमानन्द कहते थे क्योंकि बड़े परमानन्द थे डी० ए० वी० कालेज लाहौर के भूतपूर्व अध्यापक भाई परमानन्द जी। इन्हें भी लाहौर षड्यन्त्र के मामले में देश निकाले की सजा दी गई थी। पंजाब में सिक्खों के अभ्युत्थान के अवसर पर स्वदेश और स्वधर्म के लिए जब निडर देशभक्तगण मुसल्मानों के अत्याचार के आगे बेधड़क बलिदान हो रहे थे—सिर दे देते थे लेकिन धर्म न देते थे—उस समय भाई परमानन्द के एक पूर्वपुरुष ने आत्म बलिदान की पराकाष्ठा दिखला दी थी। उस समय उन्हें मुसलमानों ने आरे से चीर कर मार डाला था। उसी समय से सिक्खों में यह खानदान "भाई" नाम से विख्यात हो गया। सिक्खों में यह "भाई" संज्ञा बड़ी सम्मान सूचक है। इसलिए हम लोग सिक्खमात्र को उन के नाम के साथ "भाई" शब्द लगा कर बुलाया करते थे।

सिक्खों के एक बड़े उत्साही नेता भाई भगवानसिंह थे। इन के व्याख्यान सुन सुन कर कितने ही सिक्ख, अपना काम काज छोड़ विप्लव कार्य में सहायता करने के लिए देश में लौट आये थे। ये लोग कुछ क्षणिक उत्तेजना में आकर, सर्वस्व छोड़ छाड़ कर, इस विप्लव-धर्म में दीक्षित नहीं हुए थे वरन इन में सचमुच देश सेवा की प्रेरणा जागृत थी। इस प्रकार से जो सिक्ख देश में लौट आये थे उन में बहुतों से मेरी बात चीत हुई थी। उस से मालूम हुआ कि वे सचमुच प्राणों की प्रत्येक तह में—दिल के हर पहलू में—पराधीनता की जलन का अनुभव करके विप्लव कार्य में सम्मि

लित हुए थे। इन मे से कोई तो पिनाँग की मिलिटरी पुलिस में नियुक्त था, कोई हाँग काँग मे पहरेदार था और कोई सौदागरी करता था। इस समय हाँग काँग मे सिक्खों की एक रेजिमेंट थी। इस रेजिमेंट पर भी इन लोगों का आधिपत्य हो गया था।

भारत में प्रत्यागत दल के अनेक व्यक्ति ऐसे थे जो कि अँगरेजों की पलटनों में सैनिक पद पर नियुक्त थे। इन मे से किसी की सर्विस ८ वर्ष की, किसी की १० वर्ष की और किसी किसी की ११ वर्ष की थी। इन मे कोई भी ऐसा सैनिक न था जिसे तीन वर्ष से कम की अभिज्ञता हो। क्योंकि प्रत्येक सैनिक को कम से कम तीन वर्ष तक नौकरी करने की शर्त करनी पडती है। इन में से बहुतेरो का काम मैशीनगन चलाना था और कुछ लोग तोपखाने मे भी काम कर चुके थे।

भारत को लौटने के मार्ग में पुलिस विभाग के कर्मचारियो ने इन लोगों से पूछा था कि आखिर तुम लोग हिन्दुस्थान किस लिए जा रहे हो। तो इन में से किसी ने कहा, विवाह करने जाता हूँ और किसी ने कहा कि घर छोड़े बहुत दिन हो गये, इस लिए देश को जा रहा हूँ। ऐसे ही ऐसे कारण बतला दिये थे। फिर अदालत में मुकदमे के वक्त जब न्यायकर्ता इन से हिन्दुस्थान में आने का कारण पूछते तब भी ये लोग प्राय वैसे ही उत्तर देते थे जो कि ऊपर लिखे गये हैं। सिर्फ एक व्यक्ति ने दूसरे ढंग का उत्तर दिया था। न्यायकर्ता ने अभियुक्त से पूछा—"तुम देश में किस लिए आये थे ?" इस का उत्तर दिया गया कि 'यह हमारा स्वदेश जो है।" इन पजाबी ब्राह्मण का नाम जगतराम था। ये 'गदर" पत्रिका के सम्पादन विभाग में काम करते थे।

अमरीका से आये हुए सिक्खों में उत्साह तो अदम्य था किन्तु काम करने की नीति उन्हें मालूम ही न थी। न इन का कोई केन्द्र था और न कोई शाखा ही। किसी किसी की अधीनता में २०-२५ मनुष्य रहते थे। उसे इन २०-२५ आदमियों का सरदार कहा जाता था। ये सरदार कभी एकत्र हो जाते थे और कभी कुछ दिनों तक इन की परस्पर भेंट ही न होती थी। असल बात यह है कि सम्मिलित रूप में काम करने की एक प्रणाली का इन में अभाव था। इस का कारण यही था कि इन का कहीं केन्द्र न था। इस प्रकार देश में बिलकुल अव्यवस्थित रूप से कितने लोग गड़ बड़ मचा रहे थे यह कौन जानता है। जो लोग मुलतान जेल में कैद थे वे भी यही कहते थे कि अब शीघ्र ही बलवा होगा और इस मे हम झटपट रिहाई पा जायँगे। इस का फल यह हुआ कि ये भिन्न भिन्न जेलों में बाँट दिये गये। समान धर्मी और एक ही भाव के भावुक बहुत लोगों के एक स्थान में रहने से जो आनन्द प्राप्त होता है वह आनन्द भी इन से छिन गया।

इन सब दलों ने भारत मे आते ही बङ्गाल के षड्यन्त्रकारी दल का पता लगाना आरम्भ कर दिया। किन्तु पहले से ही किसी के साथ जान पहचान न रहने के कारण पात्र अपात्र का विचार किये बिना ही ये लोग पंजाब के विद्रोह की बातें कहने लगे। इस समय कलकत्ते की मामूली सड़कों पर भी मैंने सुना था कि पजाब मे बलवे की तैयारी हो रही है। "भारत रक्षा" कानून बनाते समय हार्डिंज साहिब ने इस बात का उल्लेख किया था।

इसी समय करतारसिंह ने आकर बङ्गाल के किसी सुपरिचित, लब्ध-प्रतिष्ठ,प्रकाश्य नेता से मुलाक़ात की। उन्हों ने करतारसिंह को उपदेश दिया कि तुम अपने सङ्कल्प और सुभीते के अनुसार काम करते जाओ, बङ्गाल तो ठीक समय पर तुम्हारी सहायता करेगा ही।

इस समय इन्हें थोड़ी बहुत हथियारों की जरूरत हुई। यद्यपि इस बलवे का प्रधान अवलम्ब पंजावी सैनिकों के दल थे, तथापि आत्मरक्षा करने के लिए यथासम्भव प्रत्येक कार्यकर्ता को सशस्त्र रखने की इच्छा से कुछ रिवालवर इत्यादि की आवश्यकता हुई। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए श्रीयुत जगतराम कुछ रुपये देकर काबुल की ओर भेजे गये और यहीं से कारागार की यन्त्रणाओं ने उन का पल्ला पकड़ लिया। किन्तु वेचारे जगतराम पेशावर में ही पकड़ लिये गये और आगे चलकर अन्दमान में मुझे उन के दर्शन हुए थे।

झाँसी वाले परमानन्द को भी इन लोगों ने इसी काम के लिए बङ्गाल भेजा था पर ये भी खाली हाथ लौट आये।

चौथा परिच्छेद

पंजाब यात्रा

इस बलवे की तैयारी के समय काशी में, बाहरी लोगों से मुलाक़ात करने के लिए ख़ास ख़ास मकान थे। पंजाब से जो लोग मुलाक़ात करने आते थे वे पहले ऐसे ही ख़ास मकान में पहुँचाये जाते थे। वहाँ से ख़बर मिलने पर दूर से आगन्तुक व्यक्ति को छिप कर पहचान लिया जाता था। तब, सन्देह न रहने पर, उस से भेंट की जाती थी। मैं उस दिन काशी में ही था। पंजाबी दल का एक मनुष्य वहाँ के विप्लव की तैयारी का समाचार लेकर हमारे पास आया। जब उस के मुँह से सुना कि बलवे के लिए दो तीन हज़ार सिक्ख कमर कसे तैयार बैठे हैं तब हमारा अन्तरतम पुष्प आनन्द से थिरकने लगा। पंजाब के कार्यकर्ताओं ने आगन्तुक व्यक्ति द्वारा कहला भेजा था कि रासबिहारी की हमें बहुत ज़रूरत है। दिल्ली षड्यन्त्र के फ़रार असामी प्रसिद्ध कर्मवीर रासबिहारी का नाम इस समय अमरीका तक में विश्रुत हो चुका था। इन लोगों ने अमरीका में ही इन का नाम सुना था।

कई कारणों से उस समय रासबिहारी पंजाब न जा सके, इस लिए पहले वहाँ मेरा ही भेजा जाना तय पाया। जब मैं पंजाब की दशा अपनी आँखों देख आऊं और सब को वहाँ का हाल बतलाऊँ तब आगे का कर्तव्य निर्धारित हो।

पहले ही निश्चित हो गया था कि जालंधर शहर में जाकर

सिक्खों के नेताओं से भेंट करूँगा। उस समय नवम्बर महीना खतम होने को था। पच्छिम में ठण्ड का मौसिम था। उसी शीतकाल के प्रात:काल लुधियाने में गाड़ी पहुँचते ही देखा कि मेरे मित्र के परिचित एक सिक्ख युवक हम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मित्र ने इन से मेरा परिचय करा दिया। यही करतारसिंह थे। ये गाड़ी में सवार होकर हमारे साथ जालधर की ओर रवाना हुए। रास्ते मे थोड़ी बहुत बातें हुई। उन से मालूम हुआ कि इस समय लुधियाने मे दो,तीन सौ मनुष्य एकत्र हुए हैं। जुदा जुदा काम करने के लिए ये लोग विभिन्न दिशाओं मे भेजे जायँगे। ये लोग गुरुद्वारे में अध्ययन करने के बहाने एकत्र होते थे।

उस दिन की बात का मुझे आज खासा स्मरण है। गाड़ी के उस डिब्बे में हम कई आदमी एकत्र हुए थे, किन्तु सभी के मन का भाव कई तरह का था। हम तीनों व्यक्ति बीच बीच में एक आध बात कर लेते थे सही किन्तु हृदय में कितने भावों का आलोडन हो रहा था। मैं रास्ते भर मे यही सोचता गया कि इस सिक्ख दल के आदमी न जाने किस ढङ्ग के होंगे, इन की शिक्षा-दीक्षा कैसी है, यह तो सुन ही चुका था कि इन में बहुतेरों की उम्र ३० वर्ष की या इस से भी अधिक है, ये मुझे किस दृष्टि से देखेंगे (क्यों कि उस समय मैं कुल २२ वर्ष का था), वहाँ जाने पर मेरा इन पर कुछ असर भी पड़ेगा, इतने बड़े उन्मत्त जनसघ को हम लोग किस प्रकार सुसंयत करके अपना अभीष्ट साधन करेंगे,—ऐसे ऐसे सैंकड़ों प्रश्न रास्ते भर भीतर ही भीतर मुझे बेचैन करते रहे। साथ ही साथ

एक आनन्द स्रोत भी मर्म की ओट करके, मानो बिना जाने ही बहा चला जा रहा था। जान पड़ता था कि इस बार जीवन का स्वप्न सफल होना चाहता है, युग युगान्तर का अन्धेरा इस बार हट जावेगा, किन्तु—किन्तु एक और बात को सोचते ही मानो शङ्का से मेरी देह कण्टकित हो उठती थी। वह यही कि बङ्गाल आज कितना पिछड़ा हुआ है—इस पुण्यधूम यज्ञ से कितने अन्तर पर है। बङ्गाल की सैंकड़ो-हजारों वर्षों की कलङ्क-कालिमा मानो गाढ़ी हो कर मुझे निरन्तर कसकती रहती थी। इसी से बङ्गाल में जाकर काम करने की मुझे बहुत इच्छा थी। ग़ैर जाने दो उस बात को।

लुधियाना पीछे रह गया। अब हम लोग एक और स्टेशन पर पहुँचे। करतार सिंह ने 'बुलेटिन' नाम का समाचार पत्र मोल लिया। उस में पढ़ा कि कलकत्ते की मुसलमान पाड़ा लेन में बम की भीषण घटना हुई है। समाचार था कि खुफिया पुलिस के डेपुटी सुपरिंटेंडेट श्रीयुत बसन्त चैटर्जी के घर पर दो तीन बम फेंके गये हैं। इस से एक हेड कॉन्स्टेबल का पैर उड़ गया, कुछ लोग घायल हुए, मकान की दीवार का कुछ अंश उड़ जाने से गड्ढा हो गया, घर के भीतर का आराइश का बहुत सा सामान सड़क पर आ गिरा और मकान के सामने का लालटैन का खम्भा टूट फूट गया है इत्यादि। किन्तु बसन्त बाबू इस बार साफ बच गये। समाचार पढ़ने से बहुतेरी बातें मैंने समझ लीं। पंजाब का वृत्तान्त लिख चुकने पर बङ्गाल की उस समय की दशा पर विचार करते समय इन सब बातों को ठीक ठीक लिखने की इच्छा है।

श्रीयुत रामरक्खा

इन बम गोलों के फटने से भारत में चारो ओर देश-भक्तों के बीच जागृति सी देख पड़ती थी। सभी, कमसे कम बहुतेरे, लोग समझते थे कि बड़े भारी बलवे की तैयारी का यह ऊपरी लक्षण है और ऐसी घटनाओं से सब को ऐसे ऐमे दलों का संगठन करने की इच्छा होती थी। उल्लिखित संवाद को पढ़कर करतारसिंह बहुत ही प्रसन्न हुए। परस्पर नेत्रों में बात चीत हो गई, एक दूसरे की आंखों के कोनों से आनन्द का आभास प्रकट हुआ। इस प्रकार हम लोग जालंधर स्टेशन पर पहुँचे। यहाँ करतारसिंह के कई छात्र-मित्र प्रतीक्षा कर रहे थे। इन में जिन से जो कुछ कहना था वह कह सुन चुकने पर हम लोग रेल की पटरी को पार कर के पास के बगीचे में गये, वहाँ पर इस दल के कई नेता उपस्थित थे। इन को देखने से मुझे भरोसा हुआ कि इन लोगों के बीच मैं बिलकुल ही कम-उम्र नहीं, क्योंकि इन में ऐसा कोई भी न जंचा जिसकी उम्र मेरी अपेक्षा बहुत अधिक हो। उस दिन वहां पर करतारसिंह, पृथ्वीसिंह, अमरसिंह और रामरक्खा के सिवा शायद एक व्यक्ति कोई और उपस्थित था करतारसिंह की उमर उस समय १९-२० वर्ष से अधिक न होगी। अमरसिंह और पृथ्वीसिंह दोनों ही राजपूत थे, किन्तु मुद्दत से पंजाब में ही रहते थे। इन की अवस्था २४-२५ वर्ष से उपर नहीं जँची। रामरक्खा ब्राह्मण थे। इन की उम्र भी इसी के लगभग होगी। ये लोग रासबिहारी से मिलने के लिए ठहरे हुए थे। मेरे पूर्व-परिचित मित्र ने इन लोगों के साथ मेरा परिचय करा

दिया। मैंने पहले पहल इन में से किसी का भी नाम धाम आदि नहीं पूछा। पीछे से बात चीत के सिलसिले में मुझे सभी का नाम मालूम हो गया। हमारे दल में ऐसी जाँच पड़ताल बुरा सन्देह की दृष्टि से देखी जाती थी और इस प्रकार नाम धाम पूछना तो मैं बिल्कुल अनावश्यक समझता था। मित्र ने मेरा परिचय यह कह कर कराया कि रासबिहारी तो एक खास काम के मारे आ नहीं सके, उन्हों ने अपने दहने हाथ स्वरूप इन्हें भेजा है। करतारसिंह ने कहा हमें तो रासबिहारी से ही काम है। तब मैंने उन्हें समझाया कि यहाँ आने से पहले वे यहाँ की दशा का पूरा पूरा हाल जान लेना चाहते हैं, इस के सिवा वे ऐसी दशा में हैं जिस से और भी कुछ समय तक इस ओर न आ सकेंगे। इसके पश्चात् मैंने इन लोगों से पजाब की हालत जानने के लिए पूछा—वे लोग कितने आदमी हैं, आपस में किस प्रकार मिलते-जुलते और मुलाकात करते हैं तथा उन का वास्तविक नेता कौन है, इत्यादि। मैंने कहा—"जो आप के असली नेता हों उन्हीं से मैं बात चीत और पहचान करना चाहता हूँ।" अमरसिंह ने कहा—"सच पूछिए तो हम लोगों में वास्तविक नेता की खास कमी है और इसी लिए हमे रासबिहारी की जरूरत है। यहाँ पर हम जितने आदमी मौजूद हैं इन में किसी को विशेष अभिज्ञता प्राप्त नहीं है, इस से हमारे काम का कोई खास सिलसिला नहीं बैठता। हम को बगाल से सहायता पाने की बहुत आवश्यकता है। बगाल में आप लोग बहुत दिन से काम कर रहे हैं इन कामो का आप लोगो को यथेष्ट अनुभव हो

गया है।" करतारसिंह ने भी इसे माना तो किन्तु अमरसिंह को लक्ष्य करके कहा—"देखो भाई, यों हिम्मत क्यों हारते हो काम के वक्त देख लेना कि तुम्हीं में से कितने छिपे रुस्तम निकलेंगे।" उस दिन की बातों से मुझे साफ मालूम हो गया कि जिस महान् व्रत में ये लोग दीक्षित हुए हैं उस के गुरुत्व का अनुभव इन की नस नस में भिद गया है और अपने में शक्ति की कुछ कमी समझ कर बाहर एक सहारा ढूँढ़ रहे हैं किन्तु उस के साथ मैं यह भी समझ गया कि इन में यदि कोई सचमुच काम करने वाला है तो करतारसिंह है। मैंने इन में जैसा आत्म-विश्वास देखा वैसा आत्म-विश्वास न रहने से किसी के द्वारा कोई बड़ा काम नहीं हो सकता। बहुतों में अहङ्कार का भाव रहने पर भी ऐसे आत्म-विश्वास का भाव कम देखा जाता है। अहङ्कार और आत्म-विश्वास अलग अलग दो चीजें हैं, अहङ्कार दूसरे पर चोट करता है किन्तु जो अहङ्कार दूसरे पर नोक झोंक किये बिना ही अपने प्राणों में शक्ति के अनुभव को जागृत करता है वही आत्म-विश्वास है।

जो हो, इन लोगों से मुझे पंजाब की बहुत कुछ हालत मालूम हो गई। उन में से बहुतेरी बातों का वर्णन पहले किया जा चुका है। इन की बातों से ज्ञात हुआ कि इन के बलवे की तैयारी का मुख्य अवलम्बन पंजाब की सिक्ख फौजें हैं। करतारसिंह से ज्ञात हुआ कि भारत में अमरीका से सिक्खों का जो पहला दल आया था उसी में वे आये थे और सितम्बर महीने से इस काम की तैयारी कर रहे हैं इत्यादि।

दिया। मैंने पहले पहल इन में से किसी का भी नाम धाम आदि नहीं पूछा। पीछे से बात चीत के सिलसिले में मुझे सभी का नाम मालूम हो गया। हमारे दल में ऐसी जाँच पड़ताल ज़रा सन्देह की दृष्टि से देखी जाती थी और इस प्रकार नाम धाम पूछना तो मैं बिलकुल अनावश्यक समझता था। मित्र ने मेरा परिचय यह कह कर कराया कि रासबिहारी तो एक ख़ास काम के मारे आ नहीं सके, उन्हों ने अपने दहने हाथ स्वरूप इन्हें भेजा है। करतारसिंह ने कहा हमें तो रासबिहारी से ही काम है। तब मैंने उन्हें समझाया कि यहाँ आने से पहले वे यहाँ की दशा का पूरा पूरा हाल जान लेना चाहते हैं, इस के सिवा वे ऐसी दशा में हैं जिस से और भी कुछ समय तक इस ओर न आ सकेंगे। इसके पश्चात् मैंने इन लोगों से पंजाब की हालत जानने के लिए पूछा—वे लोग कितने आदमी हैं, आपस में किस प्रकार मिलते-जुलते और मुलाकात करते हैं तथा उन का वास्तविक नेता कौन है, इत्यादि। मैंने कहा—"जो आप के असली नेता हों उन्हीं से मैं बात चीत और पहचान करना चाहता हूँ।" अमरसिंह ने कहा—"सच पूछिए तो हम लोगों में वास्तविक नेता की ख़ास कमी है और इसी लिए हमें रासबिहारी की जरूरत है। यहाँ पर हम जितने आदमी मौजूद हैं इन में किसी को विशेष अभिज्ञता प्राप्त नहीं है, इस से हमारे काम का कोई ख़ास सिलसिला नहीं बैठता। हम को बंगाल से सहायता पाने की बहुत आवश्यकता है। बंगाल में आप लोग बहुत दिन से काम कर रहे हैं इन कामों का आप लोगों को यथेष्ट अनुभव हो

गया है।" करतारसिंह ने भी इसे माना तो किन्तु अमरसिंह को लक्ष्य करके कहा--"देखो भाई,यों हिम्मत क्यों हारते हो काम के वक्त देख लेना कि तुम्हीं में से कितने छिपे रुस्तम निकलेंगे।" उस दिन की बातों से मुझे साफ मालूम हो गया कि जिस महान् व्रत मे ये लोग दीक्षित हुए हैं उस के गुरुत्व का अनुभव इन की नस नस मे भिद गया है और अपने में शक्ति की कुछ कमी समझ कर बाहर एक सहारा ढूँढ रहे हैं किन्तु उस के साथ मैं यह भी समझ गया कि इन में यदि कोई सचमुच काम करने वाला है तो करतारसिंह है। मैंने इस में जैसा आत्म विश्वास देखा वैसा आत्म विश्वास न रहने से किसी के द्वारा कोई बडा काम नहीं हो सकता। बहुतों में अहङ्कार का भाव रहने पर भी ऐसे आत्म विश्वास का भाव कम देखा जाता है। अहङ्कार और आत्म विश्वास अलग अलग दो चीजें हैं. अहङ्कार दूसरे पर चोट करता है किन्तु जो अहङ्कार दूसरे पर नोक झोंक किये बिना ही अपने प्राणों मे शक्ति के अनुभव को जागृत करता है वही आत्म-विश्वास है।

जो हो, इन लोगों स मुझे पजाब की बहुत कुछ हालत मालूम हो गई। उन मे से बहुतेरी बातों का वर्णन पहले किया जा चुका है। इन की बातों से ज्ञात हुआ कि इन के बलवे की तैयारी का मुख्य अवलम्बन पजाब की सिक्ख फौजें हैं। करतारसिंह से ज्ञात हुआ कि भारत में अमरीका से सिक्खों का जो पहला दल आया था उसी मे वे आये थे और सितम्बर महीने से इस काम की तैयारी कर रहे हैं इत्यादि।

अब करतारसिंह ने मुझ से पूछा—अस्त्र शस्त्र आदि देकर के बङ्गाल हमारी कहाँ तक सहायता कर सकता है? बगाल मे कै हजार बन्दूकें हैं, इत्यादि।

मैंने कहा—आप क्या ख्याल करते हैं? बंगाल में कितने अस्त्र शस्त्र होंगे?

करतारसिंह—मैं तो समझता हूँ कि बंगाल में काफी हथियार मौजूद कर लिये गये हैं, क्योंकि बंगाल तो बहुत दिनों से लड़ने की तैयारी कर रहा है और हमारे दल के परमानन्द के एक बंगाली मित्र ने उन्हें पाच सौ रिवाल्वर का वचन दिया है। इस के लिए परमानन्द बंगाल गये हैं।

मैं—जिन्हों ने परमानन्द से यह बात कही है वे कोई फालतू आदमी जँचते हैं। क्यो कि बंगाल में कोई कहीं पाच सौ रिवालवर न दे सकेगा जिन्हों ने यह बात कही है उन्हों ने गप उड़ा दी है।

करतारसिंह—"तो फिर बंगाल हम को किस प्रकार की सहायता देगा? तो क्या वहाँ भी पजाब के साथ ही साथ गदर होगा? बंगाल मे आप के अधीन काम करने वाले कितने हैं? अन्य किसी समय और किसी भी व्यक्ति को ऐसे प्रश्न करने का हम लोग मौका ही न देते थे। और यदि कोई पूछ ही बैठता तो कह देते थे, "इन बातों को जान कर क्या कीजिएगा, समझ लीजिए कि कुछ भी तैयारी नहीं हुई है, तो भी इस दल में सयुक्त होवोगे या नहीं? तुम को स्वय आरम्भ से ही तैयारी करनी होगी, इस दशा में भी क्या तुम इस दल में भर्ती होना चाहते हो? इत्यादि'। हाँ, बंगाल मे कहीं

कहीं कोई कोई ऐसे भी थे जो बलवे की जंगी तैयारी की बातें चढ़ा चढ़ा कर लोगों को सुनाते और इस तरह प्रलोभन देकर उन्हें दल में भर्ती करते थे। जो हो, करतारसिंह ने जब ये प्रश्न किये तब उन को ठीक उत्तर न देकर टाल देना मुनासिब न मालूम हुआ। मैंने कहा—'देखिये, जिस प्रकार यहाँ आप को सैनिकों में भर्ती होने का अवसर मिलता है उस प्रकार बंगाल में यदि हम लोगों को फौज में भर्ती होने का सुभीता मिलता तो अब तक कभी का भीषण विप्लव मच गया होता। बंगाल के दल में प्रधानतया युवक और छात्र श्रेणी के सदस्य हैं और इस दल में हम लोग बड़ी ही सावधानी से, बहुत कुछ छान-बीन करके, ऐसे लोगों को सम्मिलित करते हैं जो कि हर घड़ी मरने को तैयार रहते हैं। इस लिए हमारे दल में अधिक आदमी नहीं हैं, शायद हज़ार दो हज़ार से अधिक न हों, किन्तु यह दृढ़ विश्वास है कि जिस दिन आम तौर पर बलवा हो जायगा उस दिन हज़ारों आदमी हमारे साथ आ मिलेंगे। यदि पंजाब में ग़दर हो जायगा तो यह भी निश्चित समझिए कि उस दिन बङ्गाल बैठा बैठा तमाशा न देखेगा और अङ्गरेजों को बंगाल के लिए इतनी उलझन में पड़ना होगा कि सरकार अपनी कुल शक्ति एक पंजाब पर न लगा सकेगी"। मैंने यह भी कहा—"बंगाल इस समय भी सरकारी खजाने लूट सकता या पुलिस की बारकों पर छापा मारना इत्यादि काम कर सकता है किन्तु आगे क्या होगा? इस 'आगे क्या होगा' को सोच कर ही बङ्गाल ने अभी तक ऐसा कुछ नहीं किया।" मैंने इन लोगों को भली भाँति समझा दिया कि "हम लोगों से सलाह लिये बिना

मालूम होता है कि अक्सर इस में मसाले के साथ शक्कर भी डाली जाती थी। शीशी के टूटने पर एसिड पुटास और शक्कर के संयोग से यह बमगोला फट पड़ता और दवात के टुकड़े चारों ओर छितरा जाते थे। यह बम वैसा मारात्मक नहीं था, फेंके जाने पर अक्सर फटता ही न था, और जो फट भी पड़ता तो आदमी की जान लेने के लिए बहुत करके काफ़ी न होता। मैंने इन्हें समझा दिया कि बङ्गाल का बमगोला बड़ा विकट होता है। करतारसिंह से कहा कि पजाब के विभिन्न स्थानों में हमारे कुछ बमगोले रक्खे हुए हैं, जरूरत हो तो दिये जा सकते हैं। जब वे आग्रह के साथ लेने को तैयार हुए तो मैंने पूछा कि अब आप से कहाँ मुलाकात होगी। उन्हों ने उत्तर दिया कि "हमारे ठहरने का कोई निश्चित स्थान नहीं है।" इस पर मैंने पूछा—"क्या आप का कोई केन्द्र नहीं है जहाँ पहुँचने से सब बातों का पता लग जाय?" उत्तर 'नकार' में मिला। मालूम हुआ कि ये लोग अलग अलग काम से चले जाँयगे और काम हो जाने पर फिर एक निर्दिष्ट स्थान पर आ मिलेंगे। यदि किसी कारण से इस प्रकार एकत्र न मिल सकें तो गुरुद्वारे में ढूँढ़ने के सिवा पता लगाने का और कुछ उपाय नहीं। यह सुनने से मुझे बड़ा अचम्भा हुआ। मैंने समझा कि शायद मुझे सब बातें बतलाई नहीं जा रही हैं। इस कारण, अपनी रीति के अनुसार, मैंने विशेष पूछताछ नहीं की। इस के विषय में कुछ सलाह भी न दी। पीछे सम्बन्ध घनिष्ठ होने पर मालूम हुआ था कि सचमुच इन की यही दशा थी और तब उस का उपाय भी कर दिया था। उस बाग़ में, जहाँ बात चीत हो रही थी, पहुँचते ही मुझे जँच गया था कि जालंधर शहर

में इन का कोई खास अड्डा नहीं है। जो लोग यहाँ उपस्थित थे वे सभी जालन्धर शहर के बाहर के थे और मिलने के लिए आये थे। यहाँ इन का ऐसा कोई स्थान न था जहाँ जाकर मैं आराम कर सकता। इस प्रकार कुछ सिलसिला न रहने पर भी, ऐसी ही गड़बड़ में ये उन रासविहारी को बुलाना चाहते थे कि जिन्हें गिरफ्तार कराने के लिए उस समय ७५००) साढ़े सात हज़ार का इनाम बोला गया था। जो हो, ये सब बातें सुन कर मैंने करतारसिंह से अगले दिन किसी स्थान में जाने के लिए कहा वे राजी हो गये। निश्चय हुआ कि मैं उन की प्रतीक्षा उसी स्टेशन पर आकर करूँगा, फिर उन को साथ ले जाऊँगा और संरक्षित बम के गोले उन के सुपुर्द कर दूँगा।

घड़ी देखी, सब लोग अपना अपना काम करने को उठ खड़े हुए। उन की गाड़ी का समय हो गया था। मैं और मेरा मित्र दोनों एक होटल में गये। वहाँ मालूम हुआ कि मित्र जी माँस मछली कुछ भी नहीं खाते। इस लिए मुझे भी दाल और शाक सब्जी से ही सन्तोष करना पड़ा। पंजाब की तन्दूरी रोटियां और दाल बहुत बढ़िया होती हैं।

मैं भी पहले माँस मछली से परहेज करता था। नहीं कह सकता कि कितनी बार माँस-मछली खाना बिल्कुल छोड़ दिया और फिर परहेज को भी तोड़ डाला। इस से कुछ पहले की बात है,—मैं एक बार हरद्वार से आकर लक्सर जंकशन पर रासदा की प्रतीक्षा कर रहा था। वे दिन को तीसरे पहर की गाड़ी से आने को थे। स्टेशन पर अच्छा रिफरेशमेंट-रूम था। मैं हाथ-मुँह और सिर धोकर रिफरेशमेंट-रूम में गया।

रोटी और तरकारी माँगी । रोटियाँ तो बढ़िया पकी ही थीं— किन्तु वह क्या—माँस क्यों ले आया ! मुझे उस समय तक मालूम न था कि पजाबी लोग गोश्त को तरकारी कहते हैं । क्या करता, बडे पसोपेश में पडा । लौटाता तो किस तरह, और वे लोग ही इस का क्या मतलब समझते । सोच विचार कर मैंने खा लेने का ही निश्चय किया। दुबारा जब तीसरे पहर रासू दादा के साथ खाने को बैठा तब उन्हों ने भी गोश्त रोटी की फरमायश की । किन्तु तुरन्त ही मेरी ओर देख कर अर्द्धस्फुट स्वर में कहा—ओह, तुम तो गोश्त खाओगे नहीं । यह कह कर हुक्म बदलने को थे कि मैंने रोक कर कह दिया कि अब आता है तो आने दो और फिर सवेरे की घटना का उल्लेख कर के कहा कि उस वक्त तो खा चुका हूँ, अब जो इस वक्त न खाऊँगा तो खासा पाखण्ड होगा । किन्तु रासू दादा ने कहा— "देखो, इस से मन मे किसी तरह की ग्लानि न होने देना" । उस दिन से मैं फिर माँस खाने लग गया, परन्तु माँस खाने पर भी, तथा बम को हाथ से स्पर्श कर चुकने पर भी मैं खूँखार जन्तु नहीं हू ।

जो हो, तन्दूरी रोटियाँ और बढ़िया दाल खाकर जब मैं तृप्त हो गया तब शारीरिक स्वराज्य प्राप्त करके मैं तो करतारसिंह के लिए बम के गोले लाने को दूसरी ओर चला गया और मेरे मित्र महोदय लाहौर की ओर रवाना हुए । मैं गन्तव्य स्थान में पहुँच कर अपने अड्डे पर गया। वहाँ पर जो हमारा मनुष्य था उस से मैंने जालधर मे सिक्खों से भेंट होने आदि का कुछ जिक्र नहीं किया, सिर्फ यही कहा कि मुझे बम के गो-

की ज़रूरत है, एक सिक्ख महोदय आवेंगे, वे उन्हें ले जायेंगे। सिक्ख नाम सुन कर वह तनिक झिझका और कहने लगा कि सावधान, सिक्खों से ज़रा सोच समझ कर हेलमेल करना, उन पर आज कल सरकार की बड़ी सख्त नज़र है। इस समय उन के संसर्ग से अलग रहना ही भला है। मैंने मन में सोचा कि बड़ी आफ़त है, अब इस पर विश्वास करना ठीक नहीं। अब इस से कुछ वास्ता न रक्खा जाय। प्रकट रूप से उस की हाँ में हाँ मिला कर मैं ठीक निर्दिष्ट समय पर स्टेशन गया। यथा समय गाड़ी तो आगई किन्तु करतारसिंह के दर्शन न हुए। तब दूसरी गाड़ी आने पर फिर उन को ढूँढ़ा किन्तु फल एक ही सा रहा। सारे स्टेशन में उन के लिए चक्कर काटे, आँखें फाड़ फाड़ कर कितने ही लोगों के चेहरों को देखा किन्तु किसी का चेहरा करतारसिंह जैसा न दीख पड़ा। लाचार हो कर डेरे पर लौट आया। मैं तो जानता ही न था कि करतारसिंह से कहाँ भेंट होगी, लेकिन मज़ा यह कि उन के दल का भी कोई आदमी यह बात न जान सकता था। बम के गोले जहाँ के तहाँ रह गये। मैं लाहौर को लौट गया। यहाँ पुराने मुलाकातियों से मिला जुला और इन से भी पंजाब की दशा जानने की चेष्टा की। इस प्रकार अनेक स्थानों और अनेक उपायों से जो कुछ संग्रह किया था उस की अनेक बातें मैं आप से कह

रोटी और तरकारी माँगी । रोटियाँ तो बढ़िया पछाँही थीं—किन्तु वह क्या—माँस क्यों ले आया ! मुझे उस समय तक मालूम न था कि पंजाबी लोग गोश्त को तरकारी कहते हैं । क्या करता, बड़े पसोपेश में पड़ा । लौटाता तो किस तरह, और वे लोग ही इस का क्या मतलब समझते । सोच विचार कर मैंने खा लेने का ही निश्चय किया । दुबारा जब तीसरे पहर रासू दादा के साथ खाने को बैठा तब उन्हों ने भी गोश्त रोटी की फ़रमायश की । किन्तु तुरन्त ही मेरी ओर देख कर अर्द्धस्फुट स्वर में कहा—ओह, तुम तो गोश्त खाओगे नहीं । यह कह कर हुक्म बदलने को थे कि मैंने रोक कर कह दिया कि अब आता है तो आने दो और फिर सबेरे की घटना का उल्लेख कर के कहा कि उस वक्त तो खा चुका हूँ, अब जो इस वक्त न खाऊँगा तो खासा पाखण्ड होगा । किन्तु रासू दादा ने कहा—"देखो, इस से मन में किसी तरह की ग्लानि न होने देना" । उस दिन से मैं फिर माँस खाने लग गया, परन्तु माँस खाने पर भी, तथा बम को हाथ से स्पर्श कर चुकने पर भी मैं खूँखार जन्तु नहीं हूँ ।

जो हो, तन्दूरी रोटियाँ और बढ़िया दाल खाकर जब मैं तृप्त हो गया तब शारीरिक स्वराज्य प्राप्त करके मै तो करतारसिंह के लिए बम के गोले लाने को दूसरी ओर चला गया और मेरे मित्र महोदय लाहौर की ओर रवाना हुए । मैं गन्तव्य स्थान में पहुँच कर अपने अड्डे पर गया । यहाँ पर जो हमारा मनुष्य था उस से मैंने जालंधर में सिक्खों से भेंट होने आदि का कुछ जिक्र नहीं किया, सिर्फ यही कहा कि मुझे बम के गोलों

की ज़रूरत है, एक सिक्ख महोदय आवेंगे, वे उन्हें ले जायेंगे। सिक्ख नाम सुन कर वह तनिक झिझका और कहने लगा कि सावधान, सिक्खों से ज़रा सोच समझ कर हेलमेल करना, उन पर आज कल सरकार की बड़ी सख्त नज़र है। इस समय उन के ससर्ग से अलग रहना ही भला है। मैंने मन मे सोचा कि बडी आफत है, अब इस पर विश्वास करना ठीक नहीं। अब इस से कुछ वास्ता न रक्खा जाय। प्रकट रूप से उस की हाँ मे हाँ मिला कर मैं ठीक निर्दिष्ट समय पर स्टेशन गया। यथा समय गाड़ी तो आगई किन्तु करतारसिंह के दर्शन न हुए। तब दूसरी गाड़ी आने पर फिर उन को ढूँढ़ा किन्तु फल एक ही सा रहा। सारे स्टेशन में उन के लिए चक्कर काटे, आँखें फाड फाड कर कितने ही लोगों के चेहरों को देखा किन्तु किसी का चेहरा करतारसिंह जैसा न दीख पड़ा। लाचार हो कर डेरे पर लौट आया। मैं तो जानता ही न था कि करतारसिंह से कहाँ भेंट होगी, लेकिन मजा यह कि उन के दल का भी कोई आदमी यह बात न जान सकता था। बम के गोले जहाँ के तहाँ रह गये। मैं लाहौर को लौट गया। यहाँ पुराने मुलाकातियो से मिला जुला और इन से भी पजाब की दशा जानने की चेष्टा की। इस प्रकार अनेक स्थानों और अनेक उपायों से जो कुछ समह किया था उस की अनेक बातें मैं आप से कह चुका। शाम को लाहौर के समीप एक प्रकाश्य स्थान मे पृथ्वीसिंह मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे, उन से मैंने करतारसिंह की बात कही। वे भी उन का कुछ पता-ठिकाना न बतला सके। काशी जाने के सम्बन्ध मे उन्हों ने तीन चार दिन की मुहलत माँगी

निश्चय हुआ कि ५वीं दिसम्बर को वे पंजाब मेल द्वारा काशी पहुँचेगें। फिर उन्हें मैं रासविहारी के स्थान पर लेजाऊंगा, मैंने इस समय भी इन लोगों को ठीक पता न बताया था कि रासविहारी अमुक स्थान पर हैं।

लाहौर से रवाना होने के पहले मैंने अपने जिन पुरानी जान पहचान वालों से मुलाकात और बातचीत की थी उन में से एक व्यक्ति के सम्बन्ध में यहाँ कुछ कहना चाहता हूँ। शायद ये पंजाबी न थे। ये पहले संयुक्तप्रांत में ही कहीं निवास करते रहे होंगे। हाँ, अब पंजाबी हो गये थे और इन के आचार व्यवहार में पंजाबीपन आगया था। इन का पूर्व परिचय सुने बिना जरा भी भ्रम न होता था कि ये पंजाबी नहीं है। बङ्गाल से बाहर अनान्य प्रांतों में बहुतेरे बङ्गाली रहने लगे हैं। किन्तु वे लोग इतनी जल्दी अपनी विशेषता को खो नहीं देते। तीन चार पुश्त अथवा इस से भी अधिक समय तक अन्य प्रांत में रहने पर भी अधिकांश स्थलों में बङ्गाली बङ्गाली बने रहते हैं, बल्कि उन स्थानों में बङ्गालियों के मुहल्ले बस जाते हैं। किन्तु मैंने उत्तर भारत के लोगों को देखा है कि वे ऐसी दशा में, अन्य प्रदेश में रहते रहते बहुत जल्दी अपनी विशेषता गवाँ कर बिलकुल उस देश वालों में खप जाते हैं। जो हो काशी लौटने के पहले इन की बातचीत से मुझे इन की थोड़ी सी सङ्कीर्णता का परिचय मिला। इस से मैं बहुत ही दुःखित हुआ। बहुत बातचीत करने के बाद इन्हों ने दिल्ली-षड्यन्त्र वाले मुकदमे का उल्लेख करके कहा कि उक्त अवसर पर बङ्गाल से उन लोगों को कुछ भी आर्थिक सहायता नहीं मिली, यद्यपि उसी मुकदमे के असामी

वसन्तकुमार के लिए रुपये भी दिये गये और बैरिस्टर भी भेजा गया। कुछ कुछ इसी ढंग का अभियोग उन्होंने बङ्गाल पर लगाया था। यद्यपि मुझे उस समय की कुल बातें मालूम न थीं, क्योंकि दिल्ली षड्यन्त्र वाले मुक़दमे के कुछ ही पहले मैं इस दल में भर्ती हुआ था तथापि जो कुछ मुझे मालूम था उस के अनुसार मैंने कहा कि हम लोगों ने दल की ओर से किसी की कुछ सहायता नहीं की; न तो रुपये ही दिए थे और न किसी बैरिस्टर को ही पैरवी के लिए भेजा था। वसन्त बाबू के ही किसी विशेष मित्र ने अपनी ओर से द्रव्य खर्च करके ऐसी सहायता की थी। पंजाब के नये सिक्ख-दल के सम्बन्ध मे पूछताछ करने पर इन्होंने ऐसा उत्तर दिया मानो ये कुछ भी न जानते हों, और इन्हों ने जो कुछ कहा उस से स्पष्ट हो गया कि उक्त दल के सम्बन्ध में ये सर्वथा अनभिज्ञ नहीं हैं। हाँ उसे मुझ पर प्रकट नहीं करना चाहते। मजा यह है कि इस दल की बातें इन से जानने का मुझे अधिकार था। इन की बात चीत के ढग से यही व्यक्त हुआ था कि सिक्खों का यह दल अपने विचारों के अनुसार स्वयं सब काम कर रहा है, यह किसी से कुछ प्रत्याशा नहीं रखता। मतलब यह है कि "बङ्गाल क्यों दाल भात में मूसलचन्द बनता है।" जब यह पूछा कि इस समय पंजाब में रासबिहारी के आने से काम में कुछ सहूलियत हो सकती है, तो उत्तर मिला कि "हाँ, अगर वे चाहे तो आ सकते हैं। मैंने मन में सोचा, कि "हाँ, अगर चाहे तो।" मैंने देखा कि रासबिहारी को भी इस ओर बुलाने का इन्हें आग्रह नहीं है यद्यपि ये स्वयं उन से बहुत दिनों से परिचित हैं। सिक्ख-दल के मुख्य नेताओं से

परिचय करा देने के लिए उन से अनुरोध किया तो उत्तर मिला कि वैसे नेताओं से उन का खुद परिचय नहीं, लेकिन इस से पहले ये मुझ से कह चुके थे कि "लाहौर से सग्रह कर के उक्त नेताओं को हम हजार रुपया दे चुके हैं।" इस प्रकार ये जिस समय सिक्खदल की बहुत सी बातें मुझ से छिपाने का प्रयत्न कर रहे थे उस समय मैं मन ही मन मुस्कराता था।

'अहं' को हम कितना ही दूर हटाने की चेष्टा क्यों न किया करें, वह प्रकट रूप से या बेजाने में न मालूम कितने प्रकार से इस तरह चिढा चुका है। जो हो इन की सकीर्णता देख कर कोई यह न समझ ले कि सभी पजाबी इसी ढग के थे। असल बात तो यह है कि जो लोग वास्तविक कार्यकर्ता थे वे अन्य प्रान्तवालों की अपेक्षा बङ्गालियों को कुछ अधिक स्नेह और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। मुझे तो ऐसा स्मरण आता है कि अन्यान्य प्रान्त वालों की अपेक्षा यहाँ तक कि बहुतेरे पजाबियों की भी अपेक्षा सिक्ख मानो बङ्गालियों के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट थे। मेरा तो खयाल है कि जो लोग कुछ करते धरते नहीं वही समालोचना करना पसन्द करते हैं। मेरे पूर्वोक्त मित्र महोदय हमारे कामों में अक्सर अनेक रूप से सहायता तो किया करते थे किन्तु ज्यादा तर वे हम लोगों से दूर ही रहते थे। इस कारण हम लोग भी उन से विशेष सम्बन्ध नहीं रखते थे, हाँ, इस समय पजाब की भीतरी दशा को अवगत करने के लिए सभी के पास जाना मैंने

चक्कर में आगये थे।

जो हो, अब मैं यह सोच कर कि बलवे की तैयारी का यह नया पर्व आरम्भ हो गया, रेल में बैठ कर काशी की ओर बढ़ा। रह रह कर सोचता था कि कब काशी पहुँचूँ और रासू दादा को कब सारा हाल सुनाऊं।

पंजाब की दशा देख कर मैंने समझ लिया कि यदि बहुत ही शीघ्र इस नवीन शक्ति को संयत और सुसम्बद्ध न किया जायगा तो सिक्ख लोग बेमौके कुछ ऐसा कर डालेंगे जिस से सारी शक्ति और उद्यम के छिन्न भिन्न हो जाने की सम्भावना है—उस समय किसे खबर थी कि इतनी सावधानी रखने पर भी टाँय टाँय फिस होगी; 'इस जगत् में व्यर्थ कुछ भी जाता है या नहीं इस प्रश्न पर यहाँ विचार नहीं करना है।—इस प्रकार सोचते सोचते मैंने रास्ते में ही निश्चय कर लिया था कि जितनी जल्दी हो सके दादा को इस ओर भेजना होगा और अपने प्रान्त में भी अब छावनियों में—फौजों में—काम आरम्भ करना होगा। आगे चलकर बतलाऊँगा कि हम लोगों ने अब तक इस ओर क्यों ध्यान नहीं दिया। मैंने मन में सङ्कल्प कर लिया कि पंजाब में तो दादा को भेजूंगा और मैं स्वयं बंगाल को जाऊँगा। बंगाल में जाकर काम करने की मुझे बहुत दिनों से प्रबल इच्छा थी इस विषय की बात चीत दादा से मैं पहले कईबार कर चुका था, किन्तु उन की सम्मति नहीं मिलती थी।

पंजाब की सीमा को लाँघ कर गाड़ी युक्त प्रदेश में पहुँची। शाम हो गई। मेरे कमरे में मुसाफिर अधिक न थे, शायद कुल तीन चार थे। उस समय दुनियाँ के पर्दे पर कोई जगह न

थी जहाँ की बीसवीं सदी के कुरुक्षेत्र की बात चीत न होती हो? मुसाफिरों में परस्पर जान पहचान हो जाने पर तुरन्त यूरप के महासमर की चर्चा छिड़ी। मैंने अपने साथी एक मुसाफिर से पूछा कि आप के गाव से कैसे क्या रँगरूट भर्ती हो रहे हैं। उत्तर मिला कि फौज के लिए अब बहुत मुश्किल से जवान मिलते हैं हालाँकि विनती चरौरी और इनाम इकराम की भी कमी नहीं है। लोगों से कह दिया जाता है कि तनख्वाह माकूल मिलेगी और एक महीने की तनख्वाह पेशगी दी जायगी। खुद मैजिस्ट्रेट और अन्यान्य अफसर देहात में इसके लिए दौरा करने जाते हैं। जो लोग फौज के लिए इधर उधर से आदमी भर्ती करा देते हैं उन्हें खासा कमीशन दिया जाता है। किन्तु यह सब होने पर भी आदमी नहीं मिलते। जो लोग फौज में भर्ती होने लायक हैं वे गाँव छोड़ कर दूसरे गाँव में भाग जाते हैं। मैंने पूछा तो क्या आपकी तरफ फौज के लिए एक भी रँगरूट नहीं मिलता? उन्होंने उत्तर दिया कि जो लोग बिल्कुलही नासमझ हैं वे पहले तो लालच में आकर भर्ती होना मजूर कर लेते हैं किन्तु जब सैनिक का सच्चा स्वरूप प्रगट होता है तब वे नौकरी छोड़ने की चेष्टा करने पर भी नौकरी से अलग नहीं किये जाते। इस दशा में बहुतेरे मनुष्य छावनी से भाग खड़े होते हैं, तब इस के लिए उन्हें पुलिस की साँसत भोगनी पड़ती है।

पंजाब की दशा भी मैं ऐसी ही सुन चुका था। वहाँ तो रँगरूट मिलना और भी मुश्किल हो गया था।

इस समय मैंने एक बात पर विशेष रूप से ध्यान दिया क्या रेल, क्या सड़क और क्या हाट बाजार सभी जगह

अशिक्षित जनता मे अङ्गरेजों के प्रति तीव्र विद्वेष फैलता जाता था। एक दिन काशी मे, बस्ती से बाहर, कुएँ की जगत पर बैठ कर एक युक्त प्रदेश वासी व्यक्ति के साथ हमारे ही किसी काम की आलोचना हो रही थी। पास ही एक किसान घास छील रहा था। थोड़ी देर मे देखा कि वह और भी समीप आगया और घास छीलते छीलते मुस्करा कर पूछने लगा —"अङ्गरेजों का राज्य रहेगा भी या नहीं" हम लोगों ने पूछा—"तुम्हें क्या जँचता है?" उत्तर मिला—'बाबू, अब ये हिन्दुस्तान में नहीं ठहर सकते. इनका वक्त हो चुका"। "बाबू जर्मन लोग कब तक आवेंगे?" तब हम लोगों ने उसे समझाया कि जर्मनों के आने से हमारा कुछ फायदा नहीं; किन्तु उस ने फिर कहा—"नहीं बाबू जी, अंगरेज लोग अब न्याय नहीं करते, अब इन का चला जाना ही भला है।" इस पर हम को जो कहना चाहिए था वही कहा था। यहाँ उस का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं। मैंने देखा कि 'बाबू लोग' यदि ऐसे लोगों की बातें सुन कर हाँ में हाँ न मिलाते थे तो ये बाबुओं को जरा टेढ़ी नजर से देखने लगते थे।

पांचवां परिच्छेद

काशी में पुलिस के साथ सम्बन्ध

काशी में पंजाब-मेल तीन बजे पहुँचा। मेरे ऊपर पुलिस की ख़ास नजर रहती थी। सबेरे से लेकर ९-१० बजे तक पुलिस या तो मेरे घर के दरवाजे के सामने ही अथवा वहीं कहीं अगल बगल में बैठी रहती थी और घर से बाहर पैर रखते ही मेरी गति विधि पर नजर रखने के लिए वह परछाहीं की तरह मेरा पीछा करती थी। घर में रहने पर भी मुझ से मिलना जुलना लोगों के लिए सहज काम न था। क्योंकि पुलिस जिस के साथ मेरा हेल मेल देखती उस को भी निगरानी उसी तरह करने लगती जैसी कि मेरी करती थी। इस कारण, उन दिनों, मेरे जैसे लोगों के साथ मामूली ढंग पर लोगों का मिलना-जुलना भी जुर्म समझा जाता था। ऐसा सख्त पहरा रहने पर भी मैं इस प्रकार के काम करता था। बङ्गाल से काशी विभाग में बम के गोले और रिवाल्वर इत्यादि ले आता और फिर वहाँ से पंजाब के विभिन्न प्रदेशों में इन चीजों को पहुँचाता था, सभी काम इस सख्त पहरे के बीच होते रहते थे। पुलिस की आँखों में धूल झोंकना हम लोगों के लिए साधारण सी बात थी। आगे की बातें लिखने से पहले यहाँ मैं कुछ लटके लिखता हूँ, जिन से मालूम होगा कि किस प्रकार हम लोग पुलिस के पहरेवाले को छकाते थे।

पुलिस की नजर से बचने के लिए हमारी सब से बढिया हिकमत थी, घर से निकलते समय होशियारी से किसी तरह पहरे वाले को धोखा देना। यदि घर से रवाना होते समय पहरेदार की नजर से न बच सके तो क्या किया कि उस बार न तो दल का कुछ काम किया और न दल के किसी व्यक्ति से ही भेंट की, उस समय या तो अपने किसी सहपाठी के घर चले गये या हाट बाजार में जाकर जरूरी सौदा सुलुफ मे ऐसा चित लगा दिया कि घर वाले समझते कि "आज तो शचीन्द्र का ध्यान गृहस्थी के कामों की ओर बेतरह लगा हुआ है" अथवा कारमाइकेल लाईब्रेरी मे जाकर मासिकपत्रो और समाचारपत्रों की सैर करके फिर जहाँ का तहाँ अपने घर आ गया। आखिरी हिकमत यह थी कि यदि गरमियो का मौसम हुई तो घर लौट थोडा सी मालिश की और जाह्नवी के पवित्र जल मे देह तथा मन को शीतल करके पहरेवाले को सहज ही छुट्टी दे दी। सहज इसलिए कि किसी किसी दिन बेचारे को हमारा पीछा करते करते नाकों चने चबाने पडते थे। इन पहरेवालो मे से प्राय किसी के भी साथ मेरा व्यक्तिगत विरोध न था। आँख से आँख मिलते ही मैं मुस्करा देता था। कभी तिमजिले की खिडकी से झाँक कर मैंने देखना चाहा कि देखें पहरेदार किस ओर क्या कर रहा है, और ठीक इसी समय उस की भी नजर मुझ पर पड गई तब मैंने जंगले को खोल दिया। हजरत नीची निगाह करके टहलते हुए, घर के सामने से, मुस्करा कर कुछ आगे बढ गये। ऐसा अक्सर होता ही रहता था। इन पहरेदारो को धोखा देने मे भी मजा आता था और धोखा देने में विफल होजाने से भी हसी मजाक का मसाला हाथ लगता था। किन्तु किसी किसी दिन इस तेज निगाह

पांचवां परिच्छेद

काशी में पुलिस के साथ सम्बन्ध

काशी में पंजाब-मेल तीन बजे पहुँचा। मेरे ऊपर पुलिस की ख़ास नजर रहती थी। सवेरे से लेकर ९-१० वजे तक पुलिस या तो मेरे घर के दरवाजे के सामने ही अथवा वहीं कहीं अगल बगल में बैठी रहती थी और घर से बाहर पैर रखते ही मेरी गति विधि पर नजर रखने के लिए वह परछाहीं की तरह मेरा पीछा करती थी। घर में रहने पर भी मुझ से मिलना जुलना लोगों के लिए सहज काम न था। क्योंकि पुलिस जिस के साथ मेरा हेल मेल देखती उस को भी निगरानी उसी तरह करने लगती जैसी कि मेरी करती थी। इस कारण, उन दिनों, मेरे जैसे लोगों के साथ मामूली ढंग पर लोगों का मिलना-जुलना भी जुर्म समझा जाता था। ऐसा सख्त पहरा रहने पर भी मैं इस प्रकार के काम करता था। बङ्गाल से काशी विभाग में बम के गोले और रिवालवर इत्यादि ले आता और फिर वहाँ से पंजाब के विभिन्न प्रदेशों में इन चीजों को पहुँचाता था, सभी काम इस सख्त पहरे के बीच होते रहते थे। पुलिस की आँखों में धूल झोंकना हम लोगों के लिए साधारण सी बात थी। आगे की बातें लिखने से पहले यहाँ मैं कुछ लटके लिखता हूँ, जिन से मालूम होगा कि किस प्रकार हम लोग पुलिस के पहरेवाले को छकाते थे।

पुलिस की नजर से बचने के लिए हमारी सब से बढ़िया हिक्मत थी, घर से निकलते समय होशियारी से किसी तरह पहरे वाले को धोखा देना। यदि घर से रवाना होते समय पहरेदार की नजर से न बच सके तो क्या किया कि उस बार न तो दल का कुछ काम किया और न दल के किसी व्यक्ति से ही भेंट की, उस समय या तो अपने किसी सहपाठी के घर चले गये या हाट बाजार मे जाकर जरूरी सौदा सुलुफ मे ऐसा चित लगा दिया कि घर वाले समझते कि "आज तो शचीन्द्र का ध्यान गृहस्थी के कामों की ओर बेतरह लगा हुआ है" अथवा कारमाइकेल लाईब्रेरी मे जाकर मासिकपत्रों और समाचारपत्रो की सैर करके फिर जहाँ का तहाँ अपने घर आ गया। आखिरी हिकमत यह थी कि यदि गरमियों का मौसम हुई तो घर लौट थोड़ा सी मालिश की और जाह्नवी के पवित्र जल मे देह तथा मन को शीतल करके पहरेवाले को सहज ही छुट्टी दे दी। सहज इसलिए कि किसी किसी दिन बेचारे को हमारा पीछा करते करते नाकों चने चबाने पड़ते थे। इन पहरेवालो मे से प्रायः किसी के भी साथ मेरा व्यक्तिगत विरोध न था। आँख से आँख मिलते ही मैं मुस्करा देता था। कभी तिमजिले की खिड़की से झाँक कर मैंने देखना चाहा कि देखें पहरेदार किस ओर क्या कर रहा है, और ठीक इसी समय उस की भी नजर मुझ पर पड़ गई तब मैंने जंगले को खोल दिया। हजरत नीची निगाह करके टहलते हुए, घर के सामने से, मुस्करा कर कुछ आगे बढ़ गये। ऐसा अक्सर होता ही रहता था। इन पहरेदारो को धोखा देने में भी मजा आता था और धोखा देने में विफल होजाने से भी हसी-मजाक का मसाला हाथ लगता था। किन्तु किसी किसी दिन इस तेज निगाह

की बदौलत काम में गड़बड़ हो जाने से इन लोगों पर क्रोध भी कम न होता था। इन्हें हम लोग जब तब समझाया करते कि "भैया किसी तरह नौकरी संभाले रहो. भला इस तरह दिन भर दरवाजे पर डटा रहना कहाँ की भलमनसी है। घर वाले और टोले-मुहल्ले वाले भला क्या कहेंगे। सरकार समझती है कि हम लोग न जाने कौन सा खतरनाक काम कर रहे हैं, सो यह उस की गलती है। जो हो, तुम अपनी नौकरी करो किन्तु नाहक हम लोगों को इस तरह सताओ मत।" इन जासूसों में भी बहुतेरे भले आदमी थे। वे लोग हम से इतनी नम्रता और सभ्यता से बात चीत करते कि उन पर हमें तनिक सी भी कुढ़न न थी, यहाँ तक कि उन को देखने से सहानुभूति का भाव ही मन में आ जाता था। वे लोग भी अक्सर सिर्फ नौकरी के लिहाज से शाम सवेरे या दोपहर के वक्त चक्कर लगा कर या तो मेरे घर के पास ही किसी गली में आराम से बैठे रहते या सड़क पर किसी दूकान में बैठ कर गप शप किया करते थे। वे सिर्फ एक बार इतना ही पता लगा लेते थे कि मैं काशी में ही हूँ न। किन्तु जो हम लोगों को कहीं जाते देख लेते तो पीछा करने से भी बाज़ न आते थे। फिर कोई कोई तो इस तरह हमारे पीछे पड़ता मानो हम उस के जन्म जन्मान्तर के वैरी हैं। तब हम लोग भी इन्हें छकाये बिना न रहते। कभी कभी क्या करते कि यों ही चक्कर काट कर एक गली से दूसरी में जाकर एकाएक भीड में घुस जाते और फुर्ती से निकल कर न जाने किस ओर गायब हो जाते। यदि, खुफिया पुलिस का कोई दारोगा हम लोगों को इस प्रकार—बिना पिछलगू के—घूमते फिरते देख लेता तो उस दिन हम पर नज़र रखने को जो सिपाही

तैनात होता उसे सख्त सुस्त का खासा मज़ा चखना पड़ता।

लगातार जासूसों के साथ यह आँख-मिचौनी का सा खेल खेलते खेलते हम लोगों में यह खासियत पैदा हो गई थी कि इन लोगों को देखते ही भाँप लेते थे कि यह जासूस है। अब तो सभी बातें प्रकट हो गई हैं, इस लिए अब साफ़ मालूम हो गया है कि हम कभी पुलिस के चकमे मे नहीं आये, सिर्फ हमारा पीछा ही करके पुलिस एक भी नये आदमी का पता लगाने में समर्थ नहीं हुई। हम पर जिस समय यक्ष का सा कड़ा पहरा रहता था उसी समय हम लोग बम के गोले और रिवालवर लेकर काशी के विभिन्न स्थानो में आते जाते रहे हैं और इन चीजो को बाहर से काशी में लाये भी और फिर वहाँ से बाहर भेज भी दिया। मैं एक दिन सवेरे घर जा रहा था। घर के पास आते ही एक दम भेदिया-विभाग के दारोगा के सामने जा पडा। दारोगा अकेला न था उस के साथ उस का एक अनुचर भी था। मुझ पर नज़र पडते ही वह मुस्करा कर आगे बढा और मेरे पास आ खडा हुआ। मैं भी उसी तरह हँस हँस कर उस से बात चीत करने लगा। क्या मार्निंग वाक करने तशरीफ ले गये थे ?" मैंने भी कहा—'जी हाँ जरा घूम घाम आया हूँ।" "यह क्या है" कह कर मेरे बुक पाकेट की एक छोटी सी किताब की ओर उस ने उँगली से इशारा किया। मैंने उसी दम किताब निकाल कर दारोगा को दे दी। उस में नैपोलियन की कुछ उक्तियाँ और ऐसे ही दो एक अन्य विख्यात पुरुषो के जीवन की कोई कोई विशेष घटना लिखी हुई थी। उस ने खूब देख भाल कर मुझे किताब लौटा दी।

पृथ्वीसिंह से बात चीत हो जाने पर बङ्गाल को मेरा जाना निश्चित किया गया था। इस बीच अब मैं इस ताक में लगा कि काशी की छावनी मे—बारको मे—किस प्रकार मेरी रसाई हो। दो एक दिन के बाद अखबार मे पढ़ा कि अमरीका से लौटे हुए कुछ सिक्ख, ताँगे पर सवार हो, एक गाँव में जा रहे थे। सन्देह करके पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने गई तो उन के पास से रिवाल्वर इत्यादि अस्त्र बरामद हुए। फिर पुलिस जब उन्हे गिरफ्तार करने को तैयार हुई तब सिक्खों ने गोली चलाई जिससे एक सिपाही बहुत घायल हो गया। बाद को मालूम हुआ कि ये किसी खजाने को लूटने गये थे। किन्तु इन की होशियारी की तारीफ करनी पड़ती हैं कि जिन पर नजर पड़ते ही पुलिस को शक होगया।

ध्यान देने की बात यह है कि इस मौके पर गाँव वालों ने पुलिस को सहायता दी थी। गाँव वालों ने समझा कि पुलिस मामूली उचक्कों और चोरों को गिरफ्तार कर रही है। बस, इसी धोखे में आकर उन्हों ने पुलिस को मदद दी थी। इस से कुछ दिन बाद की एक घटना का हाल सुनिए। उस समय बलवे की तैयारी का भण्डा फूट चुका था। सारे पंजाब में धर पकड़ की धूम से विचित्र कोलाहल मचा हुआ था। भाई प्यारासिंह नामक एक सिक्ख युवक को गिरफ्तार करने की फिक्र में पुलिस थी। एक दिन ऐसा हुआ कि पुलिस का एक घुड़-सवार एक युवक के पीछे बेतहाशा घोड़ा दौड़ाये जा रहा था। इस दशा में, वह युवक ३ मील के लगभग दौड़ा। घोड़े की दौड़ से बाजी मारने में वह असमर्थ होने पर था कि उसी के

गांव वालों ने आकर उसका रास्ता रोक लिया। पल भर में पुलिस के सवार ने आ कर बहुत दिनों से भागे हुए आसामी भाई प्यारासिंह को गिरफ्तार कर लिया। गांव वालों को जब मालूम हुआ कि उन्हों ने जिन्हें गिरफ्तार कराया है वे उन्हीं के गाँव के सुपरिचित और सभी के परमप्रिय भाई प्यारासिंह हैं तब उन के पछतावे का अन्त न रहा। जो लोग कभी इन भाई प्यारासिंह से मिले हैं वे इन के चरित्र की मधुरता से अवश्य मुग्ध हुए हैं, और उन सभी को स्वीकार करना पड़ेगा कि इन का 'प्यारा' नाम सोलहों आने ठीक है। जैसा इन का स्वभाव नम्र था वैसे ही इन के चरित्र से एक शान्त, समाहित सयत तेज का आभास मिलता था। गांव वाले सचमुच इन के गुणों पर लट्टू थे और विधाता की मर्ज़ी देखिए कि उन्हीं गुण-मुग्ध गाववालों ने मानो अपने हाथों अपने प्यारे को पुलिस के पजे मे फँसा दिया।

जो हो, पंजाब में गिरफ्तारियां होने की खबर पढ़ कर हम लोग किञ्चित् विचलित हुए, क्योंकि हम लोग हर दम यही सोचते रहते थे कि ऐसा बढ़िया मौका तनिक सी भूल से कहीं हाथ से न निकल जाय। इधर अपने दल के उपरियुक्त दो एक लडकों से हम ने अपने कर्तव्य की बातें कहीं। इस समय से हम लोगो ने और सब कामों से ध्यान हटा कर अपना सारा सामर्थ्य सैनिको का मन परिवर्तन करने की चेष्टा करने में लगा दिया। मैं एक दिन अपने एक महाराष्ट्र मित्र के साथ फौज की बारकों की ओर गया। हम लोग सीधे बारको में नहीं गये, पहले छावनी स्टेशन पर पहुँचे। यह इस लिए किया कि यदि

कोई हमारा पीछा कर रहा हो तो, स्टेशन पर जाने से, उसे वारकों में जाने की हमारी इच्छा न मालूम हो। स्टेशन पर पहुँचने के बाद हम लोग रेल की पटरी के किनारे किनारे वारकों की ओर बढ़े। स्टेशन पर पहुँचने और वहां के लम्बे प्लेटफार्म को तय करने में साफ मालूम हो सकता था कि हमारा पीछा तो नहीं किया जा रहा है। और जब मैं रेल की पटरी के किनारे किनारे चलने लगता था तब तो कुछ छिप ही न सकता था। फ़ौज के वारको में जाते आते समय किसी भी दिन हमारा पीछा नहीं किया गया। रेल की लाइन, फ़ौज की वारक के पास से, ग्रैण्ड ट्रङ्क रोड को काटती हुई चली गई है। ग्रैण्ड ट्रङ्क रोड के मोड़ पर आकर हम ने देखा कि दो युवा सिक्ख,वारक से निकल कर, शायद बाज़ार की ओर जा रहे थे। हम को अपनी ओर आते देख कर वे लोग खड़े हो गये। मैंने इन लोगों से कितनी ही बातें पूछीं। कुछ प्रश्न ये हैं:—आप कहाँ जा रहे हैं, आप की पलटन का क्या नाम है,'आप का हवल्दार कौन है, इस समय पलटन में कितने जवान हैं, इस से पहले आप लोग कहाँ थे, यहां से कहीं जल्दी बदली तो नहीं होने वाली है; गोरों की वारकों में कितने सिपाही हैं। और यहाँ की छावनी में आप को आये कितना समय हुआ है, इत्यादि। सभी प्रश्नों के उत्तर देकर उन्होंने मुस्करा कर पूछा—"ये बातें आप क्यों पूछते हैं? हम पर हमला तो न कीजिएगा?" तब हम लोग भी इस लिए खिलखिला कर हंस पड़े कि जिस में इस उच्च हास्य के अनन्तर इन लोगों के मन में हमारे किए हुए प्रश्नों के सम्बन्ध में कुछ खटका न रहे। वे लोग अपने रास्ते लगे और हम धीरे धीरे सड़क पर, वारको के पास

होकर जाने लगे। बारकों में जाने की हमें हिम्मत न हुई। इतने में देखा कि एक और सिक्ख सड़क की तरफ आ रहा है। उससे हवल्दार की बाबत पूछा तो वह बारक के एक स्थान की ओर उंगली से इशारा करके और हम से वहीं जाने को कह कर चला गया। अब हमने सोचा कि शायद बारकों में बाहरी आदमियों के जाने आने की रोक टोक नहीं है। किन्तु फिर भी बारक में किसी से कुछ भी परिचय न होने के कारण उस दिन वहा जाने की हिम्मत न हुई। हिंदुस्तानी और अँगरेजी फौज की कुछ बातें मालूम करके हम लोग उस दिन घर की ओर लौट पड़े। काशी में सिक्खों की पल्लटन देखने से मुझे उस दिन बहुत ही उत्साह हुआ क्योंकि पंजाब मे जा कर मैंने देख लिया था कि सिक्खों को बड़ी सरलता से उत्तेजित किया जा सकता है। इस के सिवा यह भी सोचा कि यदि यह पलटन यहा कुछ दिन तक बनी रहे तो पंजाब से सिक्ख-नेताओं को यहा बुला कर सहज ही काम कर लिया जायगा। उस दिन मेरी एक यही कामना थी कि यह सिक्खों की टुकड़ी कुछ दिन तक और यहीं बनी रहे। इन दिनों कोई भी सेना की टुकड़ी एक स्थान पर बहुत दिन तक न रहने पाती थी। यह टुकड़ी भी थोड़े ही समय मे, कितनी ही छावनियों की सैर कर आई थी और कुछ भरोसा न था कि न जाने किस दिन यहा से कूच करने का हुक्म हो जाय।

इधर दिसम्बर की ५वीं तारीख आ गई। यथा समय स्टेशन पर जा कर देखा कि पंजाब मेल धक धक करता हुआ प्लेटफार्म पर आगया। मन में तरङ्ग उठी कि हमारे बलवे की तैयारी के साथ एञ्जिन का बहुत घना सम्पर्क है, इसी से उसका

प्रचण्ड वेग देख कर मैंने सोचा कि मानो पंजाब के बलवे का समाचार लेकर वह पागल की तरह दौड़ता आ रहा है। अब पंजाब की चिनगारियां इसी दम बात की बात में इस प्रान्त में भी फैल जायँगी। किन्तु गाड़ी में पृथ्वीसिंह के दर्शन न हुए। उनको बहुत ढूँढा किन्तु कहीं न देख पड़े। तब पंजाबियों पर बहुत क्रोध हुआ कि इन्हें वक्त की कदर मालूम नहीं। अब क्या किया जाए। उन लोगों को ढूंढना सहज काम नहीं है। जाकर दादा को सब समाचार सुनाया। यह अनुमान किया गया कि किसी कारण से पृथ्वीसिंह आज यहां न पहुंच सके होंगे, इस लिए मैं अगले दिन फिर स्टेशन पर गया किन्तु आज का जाना भी व्यर्थ हुआ। तीसरे दिन जाने पर भी भेंट न हुई।

छठा परिच्छेद

भाव और कर्म

दादा से सलाह करके अब मैं बङ्गाल को चला गया। वास्तव में देखा जाय तो दादा ही सारे उत्तर-भारतीय विप्लव पन्थ के नेता थे तथापि, दल की पुरानी पद्धति के अनुसार, अपना कार्य-कलाप और भी दो एक व्यक्तियों पर प्रकट करना पड़ता था। रासविहारी पहले अन्यान्य सदस्यों की भाँति दल के साधारण कार्यकर्ता थे। धीरे धीरे अपनी अद्भुत कार्यकुशलता से, सब के अलक्ष्य मे विचित्र सङ्गठन करके, एक दिन अकस्मात् बहुत से कामों का भार अपने ऊपर लेकर उन्होंने नेताओं के सम्मुख अपने को प्रकट किया। अस्तु, अब पंजाब का पर्व समाप्त करने के पहले बङ्गाल की चर्चा न छेड़ूँगा।

इस समय हमारे दल का विस्तार पूर्व बङ्गाल की अन्तिम सीमा से लेकर पंजाब में प्रवेश करने की सूचना दे रहा था। अपने प्रधान नेता और पूर्वी बङ्गाल के कुछ नेताओं को पंजाब का नया समाचार सुनाने के लिए मैं बङ्गाल को भेजा गया था। किन्तु कलकत्ते में उस समय पूर्वी बङ्गाल का कोई भी व्यक्ति न मिला। अतएव मैंने यथास्थान कह दिया कि जितनी जल्दी हो सके, पूर्वी बङ्गाल का कोई व्यक्ति काशी आजाय; फिर केन्द्र के नेताओं के पास जाकर मैंने पंजाब का सारा समाचार विस्तार के साथ कह सुनाया। उन लोगों में एक नए उत्साह की तरङ्ग मैंने

देखी सही किन्तु पूरे समाचार पर वे लोग उस समय विश्वास नहीं कर सके। बहुत रात तक बात चीत होती रही। यदि सचमुच बलवा हो जाय और यदि ऐसी दशा हो कि आमने सामने युद्ध न करके पीछे हटना पड़े तो उस समय हम लोगों को कहाँ आश्रय मिलेगा; हम लोगों को रसद किस प्रकार मिलेगी और परस्पर सम्बन्ध-सूत्र किस प्रकार से रक्षित रहेगा,—इत्यादि अनेक विषयों पर जो बात चीत हुई थी उस का यहाँ पर उल्लेख करने से कुछ लाभ नहीं। उस समय भी सिक्खों के दल विदेश से भारत में चले आ रहे थे और उन में बहुतेरे लोग कलकत्ते में कुछ दिन तक विश्राम करके पंजाब को चले जाते थे। मैंने नेताओं से कहा कि इन विदेशों से आये हुए सिक्खों से संयोग स्थापित करने की विशेष रूप से चेष्टा कीजिए। इस बात पर भी विचार किया गया कि अब बहुत जल्द बम के गोले बहुत अधिक बनाने पड़ेंगे और उस के लिए अभी से तैयारी शुरू कर देनी चाहिए।

अन्त में हम लोगों के बहुत पुराने—किन्तु फिर भी 'नित-नए'—आत्म-समर्पण योग की चर्चा निकली। जहाँ एक बार इस की चर्चा निकल पड़ती वहाँ फिर जल्द समाप्ति न होती थी। मार्ग भले ही एक हो, और सब लोग एक ही आदर्श से प्रणोदित हों तो भी वही एक बात, एक ही भाव, भिन्न भिन्न व्यक्तियों में कितनी ही नई रीतियों से विकसित होने की चेष्टा करता है। इस लिए एक भाव के उपासक होकर भी, उसी एक मार्ग के पथिक होने पर भी हम लोगों के बीच परस्पर असंख्य स्थानों में मत-भेद रहता था। गाने वाला तो एक ही है; किन्तु वही एक स्वर-लहरी पाँच श्रोताओं के

लिए कितने प्रकार की मूर्च्छना उत्पन्न नहीं कर देती! मेल तो काफ़ी रहता है किन्तु बेमेल ही क्या कम रहता है? जिस आदर्श से प्रणोदित होकर हम लोग अपने व्यक्तिगत और समष्टिगत जीवन को नियन्त्रित कर रहे थे उस भावस्रोत की तरङ्ग यद्यपि एक ही स्थान से आती थी तथापि उसने विभिन्न आधारों में अपनी विचित्रता की महिमा को स्थिर कर रक्खा था। हमारे आदर्श की छोटी मोटी बातों के झगड़ों में कितनी ही रातें बीत गई हैं, फिर भी उलझनें सुलझी नहीं हैं; एक व्यक्ति दूसरे को कुछ कुछ समझ कर जब घर से बाहर निकल आता तब उषा की लालिमा अधखिले फूल की तरह, पूर्व क्षितिज में दीख पड़ती थी। रास्ता चलते चलते जब नींद से अलसाई हुई आँखों पर पलकें गिरने लगतीं तब मालूम होता कि इतनी थकावट हुई है। रात बीतने से पहले ही इन केन्द्रों से हट जाना पड़ता था और सवेरा होने पर अनेक काम करते हुए भी रात की आलोचना का प्रसङ्ग दुबारा बातचीत करने के लिए मानो प्रतिक्षण अवसर ढूँढता रहता था; और कभी कभी दिन को काम-काज करते समय न जाने कब वह योग की भावना आकर हम पर प्रभाव जमा लेती थी। इस प्रकार भाव और कर्म के मोहन आवेश में हमारा विचित्र जीवन व्यतीत और गठित होता था।

सातवां परिच्छेद

फौज की बारकों में

काशी में वापिस आने पर दादा से ज्ञात हुआ कि काम मजे में होता जा रहा है। उन्होंने कहा—"आज ही दोपहर के बाद अमुक बाग मे एक सिपाही आने वाला है, तुम आज वहाँ जाना"। यह भी सुना कि वह पलटन काशी से बदल गई है और उस की जगह पर नई पलटन आई है। मैं दोपहर के बाद उसी बाग में पहुँचा। उस बाग में मुझे एक मित्र ले गये थे। मैंने रास्ते मे उन से पूछा कि दल का परिचय इन लोगों के साथ किस प्रकार हुआ। मित्र ने बतलाया कि "ये लोग बाजार में सौदा लेने आते थे, एक दिन छावनी की ओर जाते समय, रास्ते में इन्हें आते देखा। तब हम लोग भी इन से बात चीत करते हुए शहर की तरफ लौट पडे। रास्ते में वर्तमान युद्ध सम्बन्धी बहुत सी बातें भी हुई। हिन्दू मुसलमानो से सम्बद्ध बहुतेरी बातें भी हुई। हिन्दुओं की वर्तमान दुर्दशा और अध पात की चर्चा करते करते हम लोग बस्ती मे आ पहुँचे। इस प्रकार पहले दिन जान पहचान हो चुकने पर उन का नाम धाम पूछ लिया गया और कहा गया कि आप से जरूरी काम है इसलिए किसी दिन तकलीफ कीजिएगा। बस, उस दिन इतनी ही बात चीत हुई। दूसरे दिन वे लोग फिर गङ्गा नहाने के लिए बस्ती में आये। उस दिन हम लोगों ने उन को अपनी भीतरी बातें कह सुनाई। बहुत कुछ बात चीत हो चुकने

पर उन्हें समझाया गया कि वर्तमान युद्ध मे, विदेश मे जाकर विधर्मियों के भले के लिए प्राण देने की अपेक्षा स्वदेश में स्वधर्म के लिए प्राण देना हज़ार दरजे अच्छा है। इस का उन पर बहुत अच्छा असर पड़ा। आसानी से काम बन गया। पलटन में जाकर अपने बेड़े वालों से इस विषय की बात चीत करके वे आज मिलने को आने वाले हैं।" थोड़ी देर बाट जोही थी कि देखा, एक मनुष्य हाथ में सौदा लिये चला आरहा है। मित्र ने कहा, यही तो हैं। ये सिर से पैर तक सफेद कपड़े पहने हुए थे, मानो भीतर की विशुद्धता बाहर भी प्रकट हो रही थी। इन से बात चीत करके मैं बहुत ही आनन्दित हुआ। हिन्दुओं की स्वभाव सिद्ध नम्रता मानो इन की देह में भिदी हुई थी। इन मे एक उत्फुल्लता और उत्साह का भाव मैंने देखा, किन्तु उत्तेजना इन्हे छू तक नहीं गई थी। उस दिन इन के साथ सीधे बारक मे जाकर और इन की चारपाई पर बैठ कर बहुत बात चीत हुई। हम लोग इन की चारपाई पर बैठ कर बातें करने लगे और ये हमारी खातिर के लिए समीप के बाजार से मिठाई मँगाने का इन्तजाम करने लगे।

उस दिन अपने जीवन मे पहले पहल अँगरेजो की फौजी बारक में मैंने कदम रक्खा था। इससे पहले इन फौजी बारको के कितने ही अस्फुट रहस्य मन में न जाने कितनी बार कितनी ही सूरतों में दीख पड़े हैं। आज उसी फौजी बारक मे बैठे रहने पर भी मेरा जँचता था मानो सब रहस्य हमारे आस पास चक्कर काट रहे हैं। बीच बीच मे ऐसा प्रतीत होने लगा कि बहुत पुराना सुख स्वप्न मानो इस छावनी की बारक मे लिपटा हुआ है।

लम्बी बारक के बीच दुहरी कतार में सिलसिले से चारपाइयाँ

बिछी हुई हैं। कोई तो चारपाई पर बैठा इधर उधर की बातें मार रहा है, कोई पुस्तक पढ़ रहा है, और कोई किसी काम से वारक में आता जाता है। हम लोग परिचित सिपाहियों मे उमङ्ग के साथ बात चीत कर रहे थे सही किन्तु मन में एक ही साथ डर, अचरज और आनन्द की विचित्र गड़वड़ मची हुई थी। हमारे लिए मिठाई मँगाने का जब ये इन्तजाम करने लगे तब पहले तो हम लोगों ने इन्हें रोका कि अजी मिठाई की क्या जरूरत है रहने भी दीजिए, किन्तु इन का आग्रह देख कर अन्त में चुप हो जाना पड़ा। इधर जब मिठाई के आने में विलम्ब होने लगा तब बीच बीच में खटका होने लगा कि जरूर कुछ न कुछ दाल में काला है, शायद किसी अफ़सर को हमारी खबर देने के लिए कोई दौड़ाया गया है। थोड़ी ही देर में आस पास के सिपाहियों ने हमारी चारपाइयों पर आकर हमारे साथ बात चीत छेड़ दी। बारकों में हम लोगों ने अपने को राजपूत क्षत्रिय बतलाया था। सिर्फ राजपूतों ही के लिए बनारस में एक स्कूल और कालिज था। वहाँ राजपूतों के सिवा और कोई पढ़ने न पाता था और न वहाँ के बोर्डिङ्ग में ही रहने पाता था। अपने पूर्व परिचित सिपाही की बात के अनुसार हम ने इन लोगों को बतलाया कि हम लोग उक्त राजपूत कालिज के छात्र हैं। सिपाहियों द्वारा नाम-धाम पूछा जाने पर हम ने बड़े तपाक से अमरसिंह और जगतसिंह प्रभृति नाम बतला दिये। किन्तु मन में धुकुड़ पुकुड़ होने लगी कि कहीं हमारा असली स्वरूप प्रकट न हो जाय। यह बतलाने की जरूरत ही नहीं कि वहाँ पर हम लोग बङ्गाली लिबास में न गये थे। हम में से एक के सिर पर तो साफा था और दूसरे के सिर पर थी टोपी। पहनावा भी संयुक्त प्रान्त-

वासियों जैसा था। मुझ से साफा बाँधते न बनता था, इस लिए मैं अक्सर टोपी से ही काम लेता था।

हमारे पूर्वपरिचित सैनिक ने एक हवलदार से परिचय करा देने का वादा किया। इस हवलदार से ये हमारी चर्चा पहले ही कर चुके थे और हवलदार भी हमारे प्रस्ताव के पक्ष में हो गया था। थोड़ी देर बाद हवलदार से हमारा परिचय हुआ। इस का नाम दिल्लासिंह था। इस ने हम से कुछ झिझकते हुए बात चीत की और थोड़ी ही देर में यह कह कर कहीं चल दिया कि एक काम करके आता हूँ। दिल्लासिंह उसी समय से हमें कुछ भला न जँचा और जब वह काम का बहाना करके खसक गया तब मैंने डरते डरते पूर्व परिचित सैनिक से धीरे से पूछा कि "दिल्लासिंह पर पूरा भरोसा किया जाय? कुछ खटका तो नहीं?" तब उक्त सैनिक ने उस की ओर से बेफिक्र रहने को कह कर उसे भला आदमी बतलाया। मैंने उस दिन भी यह बात किसी से नहीं छिपाई थी कि दिल्लासिंह मुझे भला आदमी नहीं जँचता। उस दिन दिल्लासिंह जब तक वहाँ लौट नहीं आया तब तक हर घड़ी-पल पर मैं अपने मित्र से कहता था कि 'क्यो जी, अब तक आया नहीं; कहाँ गया? और एक दूसरे की ओर देख देखकर हम दोनो परस्पर मुस्कराते थे। जो हो, हमारा सन्देह जाता रहा, उस दिन तो दिल्लासिंह दुबारा लौट आया। उस दिन मामूली बात चीत करते शाम होगई, फिर हम से एकान्त में बातें करने के लिए दिल्लासिंह उस पूर्व-परिचित सिपाही को लेकर हमारे साथ साथ बारक के बाहर चला आया।

दिल्लासिंह ने हमारे प्रस्ताव को मान लिया और कहा कि हम बारक के कुछ अन्य सिपाहियो से भी बात चीत कर रक्खेंगे। दिल्लासिंह के लौट जाने पर भी पूर्व परिचित सैनिक महोदय और भी थोड़ी देर तक हमारे पास बने रहे। अब दिल्लासिंह के ऊपर हमारे शक करने पर इन्हों ने हम से फिर उस की ओर से बेखटके रहने को कहा। तब यह सोच कर मन में आनन्द हुआ कि चलो एक हवलदार तो दल में आगया। इस रीति से इस फौजी बारक में हमारा आवागमन आरम्भ हुआ और एक आध महीने के भीतर हम यहां कम से कम दस बारह बार आये-गये। इन सिपाहियों में से कुछ लोग शहर में हमारे डेरे पर भी आये थे और तब, हम लोगों ने भी इन्हें हर मर्तबा रसगुल्ला आदि कई प्रकार की बङ्गाली मिठाई खिला कर खुश किया था।

मालूम होता है कि समूचे भारत में ऐसा एक भी शहर न था जहां स्वदेशी आन्दोलन और बम के गोले के दल की बात किसी को मालूम न हो, हम लोगों ने इन सिपाहियों को अपने घर बुला कर बम के गोले, रिवाल्वर और मोजर पिस्टल आदि के दर्शन करा कर विश्वास करा दिया कि वास्तव में हम लोग भी उल्लिखित दल के सदस्य हैं। इस प्रकार कुछ दिनों तक आवाजाही होने पर इनको बतलाया गया कि पंजाब की फौज में भी बलवे की तैयारी जोरों से हो रही है। हम लोग बखूबी जानते थे कि इन लोगों को भेद की सारी बातें सुना देने से क्या अनर्थ हो सकता है, क्योंकि इन लोगों के जरिए यदि सरकारी पक्ष को हमारी गदर की तैयारी का तनिक भी पता

मिल जाता तो पंजाब का सब किया-कराया मिट्टी में मिल जाता। किन्तु इनसे दुराव रखने में भी तो सुभीता न था, जब जब इनसे कहा गया कि "यदि हमारी बातों पर विश्वास न हो तो तुम अपने किसी आदमी को कुछ दिनों के लिए पजाब भेज दो, हम उन रेजिमेंटों से इसकी जान-पहचान करा देंगे जिन्होंने कि प्रस्ताव को मान लिया है" तब हमारी बात पर इन्हें बहुत कुछ विश्वास हो गया। इस प्रकार धीरे धीरे तीन चार हवलदारों और सिपाहियों से हमारा परिचय हुआ।

हम लोग ज्यादातर शाम को या अँधेरा हो जाने पर बारकों मे जाते थे किन्तु दो एक बार दिन को दोपहर के वक्त भी जाना पड़ा है। इसी प्रकार एक दिन हम दो व्यक्ति बारक के समीप घने पेड़ों की छांह में बाट जोह रहे थे और हमारे बीच का एक व्यक्ति बारक में दो एक सिपाहियों को बुलाने गया था। देर तक राह देखने पर भी जब हमारा साथी नहीं लौटा तब हम लोग दुचित्ते होगये और डर लगने लगा कि कहीं कोई विपत्ति तो नहीं होगई। तब तो फिर यहां इस प्रकार, प्रतीक्षा करना भी युक्तिसङ्गत नहीं। किन्तु अपने साथी को ही किस प्रकार छोड़ कर चल दें,—ऐसी ऐसी बहुतेरी बातों पर हम सोच विचार करने लगे। डर तो हम लोगों को खूब लगता था किन्तु डर के मारे हम लोगों के हाथ पैर नहीं फूल गये, हमारा तो विश्वास है कि विपाद की तनिक सी भी कालिमा हमारे चेहरे पर नहीं आने पाई। और हमीं बारक में कितनी ही बार आये गये हैं, किन्तु खटके ने एक भी बार साथ नहीं छोड़ा ... भी ...

लौट आये। लौटने पर सोचते कि चलो, आज का दिन तो निर्विघ्न व्यतीत हुआ, किन्तु फिर भी कई बार बारकों में आना जाना पड़ा। जो हो, देर तक बाट जोहने पर भी जब मित्र महोदय न लौटे तब सोचा कि क्या सचमुच आफत ने घेर लिया! फिर सोचा कि हम लोग बङ्गाली हैं, हाथ में टोपी और साफा है, बारक के पास ही पेड की छांह में हम भले आदमी के लड़के बैठे हैं, इन घने पेड़ो की कतार के पास से ही ग्रैण्ड ट्रङ्क रोड गया है, जो कोई हाकिम हुकाम हमें यहां पर इस दशा में बैठा हुआ देख ले तो क्या समझेगा। हम ऐसी ही उधेड़बुन मे थे कि मित्र महोदय को दो सिपाहियों के साथ अपनी ओर आते देखा। अतः हमारे सिर से बडा भारी बोझा सा उतर गया। इस के पश्चात् इस बारक के पास दो एक बार सवेरे के समय भी आया हू, उस समय सिपाही लोग परेड पर कवायद करते थे। अपने ही परिचित एक हवलदार को सेना परिचालन कार्य्य करते देख ऐसा लगा कि रेजिमेंट मानो हमारी ही है, हमारे उद्देश्य की सफलता के लिए ही मानो यह सारी तैयारी की जा रही है। सामने से दो एक अँगरेज अफसर घोड़े पर बैठे हुए निकल गये, किन्तु किसी ने हम लोगों की ओर ध्यान नहीं दिया। उस समय तो किसी के मन में रत्ती भर भी सन्देह न था।

एक दिन की बात का मुझे खूब स्मरण है। उस समय पंजाब का दुबारा चक्कर लग चुका था। बलवे की तैयारी पूरी होने को थी। एक दिन उन्हीं घने पेडों के नीचे बैठ कर, गोरों की फौजी बारक के बिलकुल ही समीप, अंगरेजों के ही राज्य

को उलट देने के लिए कैसा भीषण षड्यन्त्र किया गया था। उस दिन कोई तीन हवलदार और नायब हवलदार तथा कुछ सिपाही, शाम होने पर, उन्हीं पेड़ों के नीचे एकत्र हुए। हम लोग भी तीन व्यक्ति थे। इन पेड़ों की क़तार के एक ओर रेल की पटरी है और दूसरी ओर है ग्रैण्ड ट्रङ्क रोड। इसी ग्रैण्ड ट्रङ्क रोड की बग़ल में थोड़ा सा मैदान छोड़ कर सेना की बारकें हैं कुछ सिपाही सड़क के किनारे पेड़ों की ओट में इस लिए बैठे हुए थे कि यदि किसी को उस ओर आते देखें अथवा ऐसा ही कुछ और खटका हो तो उसी दम हम लोगों को सावधान कर दें। हम लोग भी यथासम्भव वृक्षों की ओट में बैठ कर आसन्न विद्रोह का दिन, समय और अन्यान्य छोटी मोटी बातों पर विचार कर रहे थे। बीच बीच में ये लोग शङ्कित-चित्त से इधर उधर देख लेते थे। उस दिन मानो कई युगों की सञ्चित रोमेंस मूर्तियां, कलेवर धारण करके, उस अँधेरे में परछांहीं की तरह हमारे आगे देख पड़ी थीं, उस सन् १८५७ ईसवी के ग़दर के पश्चात् फिर उसी ताण्डव नृत्य की जंगी तैयारी का विचार करके देह और मन सचमुच ही पुलकित और रोमाञ्चित हो रहे थे। पलटन के लोग बड़ी ही आन्तरिकता के साथ हम लोगों से बात चीत कर रहे थे। इस प्रकार घने पेड़ों के नीचे गुप्त रूप से हम लोगों की सलाह करते समय यदि कोई सिपाहियों में से ही जाकर अपने ऊँचे अफ़सरों को इनकी इत्तला दे आता तब तो कोर्ट मार्शल में उन की जान के लिए बड़ी मुसीबत में फँसना पड़ता। यही कारण था कि उस दिन पेड़ों के नीचे आकर वे लोग इस

प्रकार चौकन्ने थे। किन्तु मैंने उन्हें ऐसे करने से रोका, क्योंकि इस प्रकार की तैयारी में छिपने-छिपाने का भाव बड़ी आसानी से ताड़ लिया जाता था, और इसीलिए मैंने वृक्षों की ओट में इस प्रकार छिपने के उद्योग का विरोध किया तथा इस प्रकार सन्दिग्ध भाव से बार बार इधर उधर ताकने की भी मुमानियत की थी। हम लोग कहीं भी जब इस प्रकार सलाह करने के लिए आपस में एकत्रित होते थे तब इस बात पर हम सब का सदा ध्यान रहता था कि सहज सरल भाव ही हम में बना रहे; किसी प्रकार की चञ्चलता न आने पावे। किन्तु उस दिन मना कर देने पर भी जब सिपाहियों ने मेरी बात नहीं मान कर इस तरह चौकन्ने रहने में ही भला समझा तब मैंने मन में सोचा कि ये लोग यों ही भोले भाव से और अत्यन्त आग्रह की प्रेरणा से यहाँ चले आये हैं; एवं इस बलवे की तैयारी में ये जी जान से शामिल हैं। अतएव इस तरह हमारे पास आवा-जाही करने में अपनी जान को जोखिम में समझ कर भी, मूसल की चोट का भय छोड़ कर ओखली में सिर रख कर भी, वे लोग हमारे पास आने और बलवे की तैयारी की सलाह करने में हिचकते न थे इस तरह वे न जाने कितनी बार हमारे पास आये होंगे।

उधर तो फ़ौजी बारकों में मेरी पहुँच हो गई और उधर बङ्गाल से लौटने पर कुछ ही दिनों में, अमरीका से लौटे हुए एक महाराष्ट्र युवक के आजाने से, पंजाब के साथ और भी घना सम्बन्ध करने का नया ज़रिया मिल गया। इस महाराष्ट्र युवक का नाम पिङ्गले था। इनका पूरा मराठी नाम इस समय मुझे याद नहीं। स्वदेश को वापिस आते समय इन्होंने जहाज़ पर ही निश्चय

प्रकार चौकन्ने थे। किन्तु मैंने उन्हें ऐसे करने से रोका, क्योंकि इस प्रकार की तैयारी में छिपने-छिपाने का भाव बडी आसानी से ताड लिया जाता था, और इसीलिए मैंने वृक्षों की ओट में इस प्रकार छिपने के उद्योग का विरोध किया तथा इस प्रकार सन्दिग्ध भाव से बार बार इधर उधर ताकने की भी मुमानियत की थी। हम लोग यहाँ भी जब इस प्रकार सलाह करने के लिए आपस में एकत्रित होते थे तब इस बात पर हम सब का सदा ध्यान रहता था कि सहज सरल भाव ही हम में बना रहे, किसी प्रकार की चञ्चलता न आने पावे। किन्तु उस दिन मना कर देने पर भी जब सिपाहियों ने मेरी बात नहीं मान कर इस तरह चौकन्ने रहने में ही भला समझा तब मैंने मन में सोचा कि ये लोग यों ही भोले भाव से और अत्यन्त आग्रह की प्रेरणा से यहाँ चले आये हैं, एव इस बलवे की तैयारी मे ये जी जान से शामिल हैं। अतएव इस तरह हमारे पास आवा जाही करने में अपनी जान को जोखिम में समझ कर भी, मूसल की चोट का भय छोड कर ओखली मे सिर रख कर भी, वे लोग हमारे पास आने और बलवे की तैयारी की सलाह करने में हिचकते न थे इस तरह वे न जाने कितनी बार हमारे पास आये होंगे।

उधर तो फ़ौजी बारकों में मेरी पहुँच हो गई और उधर बङ्गाल से लौटने पर कुछ ही दिनो में, अमरीका से लौटे हुए एक महाराष्ट्र युवक के आजाने से, पजाब के साथ और भी घना सम्बन्ध करने का नया जरिया मिल गया। इस महाराष्ट्र युवक का नाम पिङ्गले था। इन का पूरा मराठी नाम इस समय मुझे याद नहीं। स्वदेश को वपिस आते समय इन्हों ने जहाज पर ही निश्चय

कर लिया था कि पहले बङ्गाल के विप्लवपन्थी दल का बङ्गाल में पता लगावेंगे और तब पंजाब जावेंगे। कलकत्ते में विप्लव-दल के कई मनुष्यों से भेंट की, इस से पंजाब में बलवे की तैयारी होने की बात कलकत्ते भर में फैल गई। इधर इन के कुछ मित्रों के साथ हमारे दल का भी सम्बन्ध था और इसी नाते से पिङ्गले हमारे दल में आगये। हमारे दल में आते ही ये सीधे काशी भेज दिये गये। पिङ्गले ने कलकत्ते में बहुत लोगों से बमगोले माँगे थे। उस समय समूचे बङ्गाल को प्रधानतया हमारे केन्द्र से ही बम गोले मिलते थे। अत एव बमगोलों के लिए पिङ्गले का घना सम्बन्ध हम लोगों से हो गया।

काशी में इन्हीं दिनों हमारे मन में यह आशङ्का हो रही थी कि शायद अब हमारा सम्बन्ध पंजाब से जुड़ना कठिन हो जाय; क्योंकि ५वीं दिसम्बर को पृथ्वीसिंह काशी आने वाले थे, किन्तु न तो उन के दर्शन हुए और न पंजाब का ही कुछ समाचार मिला, ऐसे अवसर पर पिङ्गले के मिल जाने से ऐसी प्रसन्नता हुई मानो कुबेर का धन हाथ लग गया हो। पिङ्गले के आजाने से हम लोगों को सचमुच बड़ा आसरा मिल गया। इन की देह समुन्नत और बलिष्ट थी, खूब गोरा रङ्ग था और इन की आंखों तथा चेहरे से सुतीक्ष्ण बुद्धि झलकती थी। इस बुद्धिमत्ता ने उस दिन हमारे मन में खास जगह कर ली थी। इन्हें देखने और इन से बात चीत करने से हम लोगों को पक्का विश्वास हो गया था कि इन के हाथों हमारे कई काम सिद्ध होंगे किन्तु सच तो यह है कि मनुष्य को पहचान लेना बड़ा कठिन काम है।

मनुष्य-जीवन का आदर्श कैसा हो,—इस सम्बन्ध में

स्वभाव के प्रतिकूल होता है उसे या तो हम भूल जाते हैं या केवल खण्डन करने के लिए याद रखते हैं और खण्डन करने में जिन युक्तियों और घटनाओं से हमें सहायता मिलती है उन्हें भी हम अपनी अवस्था और अभिज्ञता के साथ प्राप्त किया करते हैं।

याद आता है कि अन्दमान द्वीप में रहते समय एक दिन रामेन्द्र बाबू की विचित्र प्रसङ्ग नामक पुस्तक पढ़ने से बिलकुल इसी ढग के अनेक प्रकार के विचार मन में गम्भीर भाव से फैल गये थे और उन को मैंने अपनी नोट-बुक में लिख रक्खा था। उन्हें मैं उपेन्द्र दादा (उपेन्द्रनाथ बैनर्जी जो कि युगान्तर के सम्पादक थे और जिन्हें अलिपुर वाले मामले में कालापानी हुआ था) को प्राय दिखलाता और वे उन की तारीफ़ करते तो मन में बड़ा आनन्द होता था। अन्दमान की बातें जहाँ लिखी जायँगी वहीं बतलाया जायगा कि मेरी वह नोट बुक किस तरह नष्ट हुई।

पिङ्गले को दो एक दिन काशी ठहरा कर पजाब भज दिया। उन का अनुरोध था कि पंजाब में हम उन के पास बेहिसाब बम गोले भेज दें, अतएव उन से कहा गया कि गोले तो भेजे जा सकते हैं किन्तु एक एक बमगोले के बनाने में सोलह रुपए के लगभग खर्च बैठता है, इस लिए रुपए की मदद मिले बिना बेहिसाब बमगोलो का भेजा जाना कठिन है। इन से पृथ्वीसिंह और करतारसिंह की भी चर्चा कर दी गई। अब रुपये लाने और पजाबियों का कच्चा हाल जानने के लिए पिंगले पजाब को गये। पिंगले के पास इनके कुछ साथियों का

पंजाब के विप्लव दल के नेता

करतारसिंह

पिंगले

पृथ्वीसिंह

पता ठिकाना था। कोई एक हफ्ते में ही ये काशी लौट आये। अब रासबिहारी की पंजाब-यात्रा में भी कुछ रोक टोक न थी। किन्तु उनके जाने के पहले मैं एक बार फिर पिंगले के साथ पंजाब हो आया।

दिसम्बर महीने के सवेरे खासी ठण्ड पड़ रही थी जब मैं साधारण हिन्दुस्तानी के लिबास में पिंगले के साथ अमृतसर पहुंचा। मैं तो पंजाबी भाषा बोल न सकता था किन्तु पिङ्गले को इसका अभ्यास था। हम लोग एक गुरुद्वारे में जाकर ठहरे। यहां पर पिंगले ने एक पंजाबी मुखिया से मेरा परिचय कराया। इन का नाम मूलासिंह था।

मूलासिंह संघाई के पुलिस विभाग में नौकर थे और वहाँ पर भी पुलिस के हड़तालियों के मुखिया बने थे। इस बार उन लोगों से भी मेरा परिचय हुआ जो कि पिनाँग में नौकर रह चुके थे। इस समय मैंने बहुत से देहाती सिक्खों को यहाँ आते जाते देखा था। ये अधिकतर किसान या मजदूर थे, किन्तु ये भी देश का काम करने के लिए मतवाले हो रहे थे। सिक्ख सम्प्रदाय की ऐसी ही शिक्षा दीक्षा है। इन में से बहुतेरों की देह खासी गठीली और कसी हुई थी।

इस बार मैंने मूलासिंह को एक केन्द्र बनाने की आवश्यकता भली भांति समझाई और इसके अनन्तर इन्हीं ने केन्द्र का भार ग्रहण किया। किन्तु यदि ये केन्द्रपति न बनते तो बहुत अच्छा होता।

पंजाब के विभिन्न स्थानों से आये हुए कार्यकर्ता लोग इस समय हाथ में कुछ काम न होने और खाने-पहनने का सुभीता

न रहने के कारण भुनभुना रहे थे और इन में से बहुतों के दिल में एक तरह से असन्तोष की आग धधक रही थी इसका दायित्व प्रधानतया मूलासिंह पर ही था । ये सब लोग जी लगा कर देश का काम करने के लिए दूर दूर से घर-द्वार और अपना काम काज छोड कर आये हुए थे । इन में से कोई भी जीविका के लिए कुछ उद्योग नहीं करता था और उस समय जैसी दशा थी उस के लिहाज से उद्योग करने का कुछ सुभीता भी न था । इस समय यदि दो रोटियों के लिए शाम सबेरे नेताओं से तकाजा करना पडे तो इस काम में सचमुच सभी का चिढ जाना सम्भव है । ये सभी लोग गुरु द्वारे में तो रहते और पास के होटल में खाते थे । हमारे यहा देश का काम करते समय अक्सर इस तरह के मामूली छोटे छोटे कामों ने बहुतों के दिलों को दुखाया है और इसके फल स्वरूप कई अवसरों पर बहुत कुछ अनर्थ भी हुए हैं। इस से कई बार इस बात पर ध्यान जाता है कि जब तक गाँठ में काफी रकम न हो तब तक दूसरों की दी हुई रोटियों के भरोसे देश का और दस भाइयों को कार्य करने का तैयार होना ठीक नहीं। फिर यह भी देखा है कि आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने की चेष्टा में प्राय अर्थ उपार्जन करना ही मुख्य काम हो जाता है और तन मन से देश का काम न किया जाय तो प्राय कुछ भी नहीं होता । इस के सिवा काम न रहने से भी बहुत से दल नष्ट हो चुके हे । इस समय पजाब मे उपयुक्त नेता न रहने के कारण वहा बहुतेरे कार्य कर्ता हाथ पर हाथ रक्खे सुस्त हो पडे थे, काम न किया जाने के कारण देश चौपट

हो रहा था और मजा यह कि काम करने वालों को खोजने पर भी काम न मिलता था। रासबिहारी ही ऐसे 'नेता' थे जिन्हों ने उन्मत्त जनसंघ को कुछ परिमाण में सुनियन्त्रित कर लिया था। मैंने भी इस गोल माल को सुधारने की भर सक कोशिश की थी। मूलासिंह से मुझे मालूम हुआ कि बलवा होने पर बहुत सी रेजीमेटों ने देशवासियों के अनुकूल हो जाने का वचन दिया है। जिन पल्टनों में इस समय तक मनुष्य नहीं भेजे गये थे उन की मैंने एक फेहरिस्त बनाई और विभिन्न प्रदेशों से आए हुए पंजाबी कार्य्य कर्ताओं को उल्लिखित पल्टनों में भेजने की व्यवस्था की।

मूलासिंह से मेरा परिचय करा के पिछले अन्यान्य परिचित सिक्खों की तलाश में 'मुक्तसर' के मेले को गये। इस मुक्तसर के मेले का थोड़ा सा अद्भुत इतिहास पाठकों को सुनाए बिना मुझ से नहीं रहा जाता।

एक बार 'आनन्दपुर' के किले में गुरु गोविन्दसिंह अपने परिवार और अन्याय लोगों के साथ घेर लिये गये। यह घेरा लगातार सात महीने तक रहा। घेरे के कारण दोनों दल—जो किले में घिरे हुये थे और जो लोग बाहर से घेरा डाले हुए थे—बहुत उब गये। मुसलमानों की ओर से बार बार गुरु से 'आनन्दपुर' छोड़ कर चले जाने का प्रस्ताव किया गया किन्तु गुरु ने इस पर विचार नहीं किया। गुरु को इस प्रस्ताव पर किसी भी तरह राजी न होते देख बाहर जाने की इच्छा से कुछ सिक्खों ने गुरु जी की स्त्री गुजरी को यहां से हट जाने के प्रस्ताव पर राजी कर लिया किन्तु गुरु गोविन्द सिंह इतने पर भी अपने

निश्चय से विचलित न हुए। भूख के कारण बहुतेरे सिक्ख अधीर हो रहे थे। पेट की ज्वाला के कारण उस समय वे गुरु की आज्ञा टालने पर उतारू हो गये। तब गुरु गोविन्द सिंह ने कहा—'तुम लोग अब तक सिक्ख गुरु के आश्रय में थे, किन्तु अब भूख के मारे बेचैन हो गुरु का वाक्य लंघन करके शत्रुओं के हाथ में आत्म समर्पण करने जा रहे हो। इस में सिक्ख गुरु की कोई जवाबदारी नहीं है। अतएव इस के लिए 'बे दावा' लिख कर चाहे जहां चले जाओ। और सब सिक्ख तो इस प्रकार "बे दावा" लिख कर गुरु को वहीं छोड़ कर चलते हुए किन्तु ४० सिक्खों ने गुरु का साथ नहीं छोडा। अन्त में गुरु गोविन्द सिंह को भी वह स्थान छोड़ना' पड़ा और शत्रु के पीछा करने पर वे अनेक स्थानों में बचाव के लिए दौड़ धूप करने लगे। किन्तु उन चालीस सिक्खों नें किसी भी दशा में गुरु का साथ नहीं छोड़ा। इस प्रकार घूमते फिरते हुए गुरु गोविन्दसिंह जब मद्र देश में पहुंचे तब उन 'बे दावा' सिक्खों में से बहुतों ने आकर गुरु से भेंट की। अब इन्हों ने शत्रु से सन्धि करने के लिए गुरु जी से दुबारा अनुरोध किया। इस पर गोविन्द सिंह ने कहा कि "जो तुम चाहो तो यह लिख कर चले जा सकते हो कि हम सिक्ख नहीं हैं।" तब 'हम सिक्ख नहीं हैं' यह बात लिख कर और वह पत्र गुरुजी को दे कर चालीस सिक्ख चले गये। किन्तु इस सङ्कट के समय पर श्री गुरु को छोड़ कर चले जाने के कुछ ही देर बाद उन लोगों के मनमें बड़ा पछतावा हुआ। इधर "खेदराना" नामक तालाब के समीप शत्रु दल ने फिर गुरु गोविन्दसिंह पर हमला किया। घोर संग्राम करते करते गुरु

ने देखा कि किसी ओर से एक दल ने आ कर शत्रुपक्ष पर धावा बोल दिया है। गुरु गोविन्दसिंह की समझ में न आया कि इस विपत्ति के समय में यह हमारी सहायता करने कौन आ पहुँचा है । इन नये आये हुए योद्धाओं की मार के आगे मुसलमान ढीले पड़ गये किन्तु थोड़ी देर युद्ध करके प्रायः सभी जूझ गए। इस तरह एक मुसलमान के बल्लम से निहत व्यक्ति की लाश उठा कर देखा तो वह लाश एक स्त्री की निकली इसका नाम माई भागो था। इसी की सलाह और प्रेरणा से "वे दावा" सिक्खों ने अपनी भूल को सुधारने का मार्ग ढूंढ़ निकाला था । युद्ध का अन्त हो चुकने पर गुरु गोविन्दसिंह, रणभूमि में लेटे हुए प्रत्येक मृत सिक्ख के पास जा कर उस के धूल में लिपटे हुए मुँह को पोंछ कर वैसी हिफाजत और आदर कर रहे थे जैसा कि पिता अपने पुत्र का करता है। अन्त में उन्हों ने देखा कि एक व्यक्ति में उस समय तक प्राण थे। इसका नाम महा सिंह था । महासिंह के मस्तक को अपनी गोद में रख कर और उसके सिर पर हाथ फेरते फ़ेरते गुरु गोविन्दसिंह ने पूछा—"महासिंह, तुम क्या चाहते हो ? महासिंह की आँखों में आँसू भर आए। उसने कहा— 'मैं यही चाहता हूँ कि हम लोगों के उस पत्र को फाड़ डालिए जिसमें हम लोगों ने लिख दिया था कि 'हम लोग सिक्ख नहीं हैं।' अब गुरुजी ने समझा कि दूसरी ओर से शत्रु पर किसने हमला किया था गुरु जी ने देखा उन चालीसों सिक्खों ने रणक्षेत्र में प्राण दे दिये हैं। लाशों में उन्हों ने स्त्रियों की भी लाशें दखीं। अब "सिक्ख नहीं" वाला पत्र गुरु जी ने फाड़ कर फेंक-

दिया। महासिंह भी महानिद्रा में मग्न हो गया। वहाँ पर जो लोग उपस्थित थे उन से गुरु गोविन्दसिंह ने कहा कि 'जिस खालसा" में ऐसे महाप्राण हैं वह खालसा सहज ही नष्ट नहीं होगा। जहाँ पर एक भी भक्त प्राण आत्माहुति देता है वह स्थान पवित्र हो जाता है। यहाँ पर तो इतने अधिक महाप्राण व्यक्तियों ने प्राण दे डाले हैं, इस लिए इस स्थान का नाम 'मुक्तसर हुआ और यहा के तालाब मे जो कोई स्नान करेगा, मुक्त हो जायगा। इस प्रकार मुक्तसर मेले की उत्पत्ति हुई। यह सिक्खों का महामेला है। यहाँ पर हर साल एक लाख से अधिक सिक्खो का जमाव होता है। सिक्खों के प्रत्येक उत्सव के साथ ऐसे एक न एक अपूर्व इतिहास की कथा संलग्न है और हर एक सिक्ख का ऐसे उत्सव और उमङ्ग के बीच लालन पालन होता तथा ऐसी ही आबहवा में वह मनुष्य बनता है। मेरी समझ से तो सिक्ख जाति भारत की एक अपूर्व जाति है।

पिछले जिस समय "मुक्तसर" के मेले से लौट कर आए उस समय कर्तारसिंह अमरसिंह आदि सभी गुरुद्वारे में उपस्थित थे। मुझे देख कर कर्तारसिंह बहुत ही प्रसन्न हुए और पूछा कि 'बोलो, रासबिहारी कब आवेंगे ? मैंने कहा— "बस, अब उन्हीं का नम्बर है, यहाँ ठहरने के लिए कुछ इन्तजाम हो जाय और आप का काम भी तनिक सिलसिले से होने लगे, बस फिर उन के आने मे देर नहीं।" इस समय मैंने कर्तारसिंह को केन्द्र की आवश्यकता विशेष रूप से समझाई और यह भी कहा केन्द्र का भार मूलासिंह ने ग्रहण कर लिया है। रासबिहारी के लिए अमृतसर और लाहौर

में दो दो किराये के मकान लेने को कह दिया। इन सारी बातों के सम्बन्ध में दादा ने मुझ से पहले ही कह रक्खा था. एक ही समय में विभिन्न स्थानों पर कई मकान अपने अधिकार में होने चाहिए। सो ऐसा ही किया गया। अमृतसर का मकान तो मैंने ही देख कर पसन्द किया। लाहौर में मकान लेने के लिए दूसरा आदमी भेजा गया। पंजाब को उस समय की दशा का हाल कर्तारसिंह से सुन कर मुझे बहुत कुछ आशा हुई। मैंने सोचा कि इस बार सचमुच कुछ कहने लायक काम हो रहे हैं इस समय सिक्खों का एक और दल अमृतसर में आया। यह दल अमेरिका से लौट कर आया था इस दल के कुछ नेताओं को मैंने देखा इन में एक तो इतने वृद्ध थे कि उनके गालों में झुर्रियां पड़ कर लटकने को थीं। मेरा खयाल है कि ये वही वृद्ध पुरुष थे जिन्हों ने अन्दमान टापू में भी बड़े तेज के साथ अपना थोड़ा सा समय बिता कर ६० या ७० वर्ष की अवस्था में उसी द्वीप में जीवन को विसर्जित कर दिया। इस बुढ़ापे में भी इन्होंने अन्दमान में हड़तालियों के साथ हड़ताल करने में कभी पीछे पैर नहीं रक्खा। इस दल का कोई व्यक्ति उस समय अपने घर न पहुंचा था। अमेरिका से भारत में आकर अमृतसर में ही ये लोग ठहरे थे इन्होंने अपनी गाढ़ी कमाई में से हम लोगों को ५००) दिये थे।

इन दिनों कर्त्तारसिंह अद्भुत परिश्रम करते थे। वे प्रति दीन साइकल पर बैठकर देहात में कोई ४०-५० मील का चक्कर लगाते थे। गाँव गाँव में काम करने को जाते थे। इतना परि-

श्रम करने पर भी ये थकते नहीं थे। जितना ही ये परिश्रम करते थे उतना ही मानों उन मे फुर्ती आती थी। देहात का चक्कर लगा कर अब ये उन पल्टनों में गए जिन में कि काम नहीं किया गया था। उन लोगो के काम करने का ढंग इतना कच्चा था कि जिस से इस समय इन में से बहुतों की गिरफ्तारी के लिए वारण्ट निकला। कर्त्तारसिंह को गिरफ्तार करने के लिए इस समय पुलिस ने एक गाँव को जाकर घेर लिया उस समय कर्तारसिंह गाँव के पास ही कहीं मौजूद थे पुलिस के आने की खबर पाते ही साइकिल पर सवार हो वे उस गाँव में आगए पुलिस उन्हें पहचानती न थी। उस मर्तबा कर्तारसिंह इसी असम-साहसकिता के कारण साफ बच गये। यदि वे ऐसा न करते तो रास्ते में ही बहुत करके पकड़ लिये जाते।

इस समय रुपये-पैसे का खर्च इतना अधिक बढ़ गया था कि अब दान की रकम से काम न चलता था इस लिए अब ये कुछ कुछ डकैती करने के लिए लाचार हुए। पीछे से मालूम हुआ कि मूलासिंह भला आदमी न था, इसने दल का रुपया पैसा भी हड़प लिया। जिस समय ये बातें मालूम हुईं उस समय सुधार का कोई उपाय नहीं था। क्योंकि जहाँ तक मुझे स्मरण है, यह इसके थोड़े ही दिन बाद नशे की हालत में शीघ्र ही गिरफ्तार कर लिया गया। इस के सिवा व्यक्तिगत शत्रुता के कारण इस ने एक आदमी के यहाँ डकैती भी कराई थी।

सभी बड़े बड़े आन्दोलनों मे देखा गया है कि साधु और महन् चरित्रवान् पुरुषो के साथ ऐसे ऐसे नर पिशाच भी दल मे आ

मिलते हैं। यह आन्दोलनों का दोष नहीं है, यह तो हमारे मनुष्य चरित्र का ऐब है। शायद लेनिन ने भी कहा था कि प्रत्येक सच्चे वोल्शेविक के साथ कम से कम ३९ बदमाश और ६० मूर्ख उनके दल में मिल गये थे(Russia's Ruin, P 249 by E Wilcox) और मैंने श्रद्धेय शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय जी से सुना है कि देशबन्धु दास ने भी कदाचित् कहा था कि वकालत करते करते हम बुड्ढे हो गये और इस बीच हम को बडे बडे धोखेबाजों से भी साबिका पडा किन्तु असहयोग आन्दोलन मे हमने जितने धोखेबाज और दगाबाज आदमी देखे हैं वैसे जिन्दगी भर मे नहीं देखे।

मैं इस बार पजाव मे हफ्ते भर के लगभग इन लोगों के साथ रहा। अतएव इन के बहुत से आचार व्यवहारों को मैंने ध्यान से देखा। यद्यपि ये लोग कडाके की ठण्ड मे भी बहुत ही तडके नहा धोकर ग्रन्थसाहब इत्यादि का पाठ करते थे किन्तु होटल मे भोजन करने के कारण इन का खान पान शुद्धतापूर्वक न होता था परन्तु इन का आपस का बर्ताव बहुत ही भला था। एक दूसरे को बुलाते या बात चीत करते समय ये 'सन्तो" "सज्जनो" 'बादशाह" इत्यादि सम्मान सूचक शब्दों के सिवा और किसी शब्द का प्रयोग न करते थे। इस बार भाई निधानसिंह से मेरी मुलाकात हुई। यही वह ५० वर्ष के बूढे सिक्ख थे। ये कोई ३० ३५ वर्ष से देश के बाहर थे और चीन मे रहते समय एक चीनी सुन्दरी से इन्होने विवाह कर लिया था। मैं इन्हे अक्सर धर्म चर्चा और धर्म ग्रन्थ का पाठ करते देखता। एक बार मैंने स्टेशन पर जाकर देखा कि वहाँ प्लेटफार्म पर बैठे हुए आप छोटी सी धर्मपुस्तक को मन ही मन पढ रहे हैं। वे सिर्फ दिखावे

के लिए कुछ ऐसा नहीं करते थे क्योकि मैंने अन्दमान मे भी इन की यही दशा देखी थी। मैंने इन मे जैसे तेज देखा है वैसा नौजवानो भी मे नहीं देखा है।

साधारणतया पंजाबियों का चाल-चलन अच्छा नहीं होता; फिर पंजाबियो के बीच सिक्खों का चरित्र तो और भी जघन्य है। शायद इसका प्रधान कारण पंजाब में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की सख्या बहुत ही कम होना है। इसके सिवा पजाब प्रान्त शायद तमोमुखी राजसिक भाव से परिपूर्ण है। लगातार मुद्दत से विदेशियों के संघर्ष में रहने के कारण क्रमश: निम्नतर सभ्यता के संस्पर्श में आकर यहाँ की सभ्यता मानो धीरे धीरे फीकी पड़ गई है। अवनति के दिनो में यह विदेशियो का सस्पर्श जैसा हानिकारक है वैसा ही उन्नति के ज़माने मे इससे सर्वश्रेष्ठ सभ्यता का विकास भी हो सकता है। जो लोग बुरे मार्ग पर बहुत आसानी से चले जाते हैं उनमे भले बनने की भी बहुत कुछ सामर्थ्य है, और वह शायद उतनी और लोगों मे न हो। इस कारण असंयम, निष्ठुरता, नीचता और हिंसा वृत्ति से सिक्खों का चरित्र जिस प्रकार कलङ्कित है उसी प्रकार सयम, उदारता और क्षमा वृत्ति मे भी वे लोग अपना सानी नहीं रखते। तभी तो इन गये-बीते दिनों मे भी अध. पतित सिक्ख जाति ने "ननकाना साहब" और "गुरु का बाग" मे अद्भुत वीरत्व और संयम का नमूना दिखला दिया।

पंजाब में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ही अधिक बदनाम हैं किन्तु इसी पंजाब मे उस दिन सतीत्व की ऐसी गौरवोज्ज्वल स्निग्ध किरण प्रकट हुई थी कि जिसकी तुलना इस कलिकाल

में मिलना कठिन है।। डी० ए० बी० कालेज लाहौर के भूतपूर्व अध्यापक भाई परमानन्द के छोटे चचा के बेटे, भाई बालमुकुन्द, दिल्ली षड्यन्त्र वाले मुक़दमे में गिरफ्तार किये गये।. इन्हीं बालमुकन्द के पूर्वपुरुष मोतीदास को सिक्खों के अभ्युत्थान-समय में आरे से चीर कर मार डाला गया था। गिरफ्तार होने से एक वर्ष पहले भाई बालमुकुन्द का विवाह हुआ था। इन की स्त्री श्रीमती रामराखी परम सुन्दरी ललना थीं। उम्र इन की नई थी ही। जिस दिन इन के स्वामी गिरफ्तार हुए उसी दिन से ये व्याकुल हो गई और अनेक प्रकार से देह को सुखाने लगी। फिर जब भाई बालमुकुन्द को फांसी का हुक्म होगया तब ये उनसे मिलने गई। किन्तु इनके मर्माश्रुओं ने, जी भर कर स्वामी के दर्शन न करने दिये। घर लौट कर ये एक प्रकार से अधमरी दशा में समय बिताने लगी। एक दिन ये अपने कमरे में थीं कि बाहर से रोने का कोलाहल सुन पड़ा। कमरे से बाहर आने पर श्रीमती रामराखी को असल बात मालूम हो गई। ये अब और न सहन कर सकीं स्वामी का मृत्यु-समाचार पाकर सती साध्वी, खासी नीरोग दशा में, स्वामी का ध्यान लगा कर मानो स्वामी से जा मिली मिट्टी में मिल जाने के लिए ही मानो उन की देह इस लोक में पड़ी रह गई। ऐसे पतिप्रेम और आत्मोत्सर्ग की तुलना है कहीं ?

इस घटना का स्मरण आने से ही देह और मन पुलकित होकर कण्टकित हो जाता है। बालमुकुन्द की गृहिणी ! तुम धन्य हो। ऐसी स्त्री के बिना क्या ऐसा स्वामी हो सकता है ! हाय रे भारत के नसीब, ऐसी स्त्री और ऐसा स्वामी भी तुझे न बदा था !

भाई बालमुकुन्द

में मिलना कठिन है।। डी० ए० वी० कालेज लाहौर के भूतपूर्व अध्यापक भाई परमानन्द के छोटे चचा के बेटे, भाई बाल मुकुन्द, दिल्ली पड्यन्त्र वाले मुकद्दमे मे गिरफ्तार किये गये। इन्हीं बालमुकुन्द के पूर्वपुरुष मोतीदास को सिक्खों के अभ्यु त्थान-समय में आरे से चीर कर मार डाला गया था। गिरफ्तार होने से एक वर्ष पहले भाई बालमुकुन्द का विवाह हुआ था। इन की स्त्री श्रीमती रामराखी परम सुन्दरी ललना थीं। उम्र इन की नई थी ही। जिस दिन इन के स्वामी गिरफ्तार हुए उसी दिन से ये व्याकुल हो गई और अनेक प्रकार से देह को सुखाने लगी। फिर जब भाई बालमुकुन्द को फासी का हुक्म होगया तब ये उनसे मिलने गई। किन्तु इनके मर्माश्रुओं ने, जी भर कर स्वामी के दर्शन न करने दिये। घर लौट कर ये एक प्रकार से अधमरी दशा में समय बिताने लगी। एक दिन ये अपने कमरे मे थीं कि बाहर से रोने का कोलाहल सुन पड़ा। कमरे से बाहर आने पर श्रीमती रामराखी को असल बात मालूम हो गई। ये अब और न सहन कर सकीं- स्वामी का मृत्यु समाचार पाकर सती साध्वी, खासी नीरोग दशा में. स्वामी का ध्यान लगा कर मानो स्वामी से जा मिली मिट्टी में मिल जाने के लिए ही मानो उन की देह इस लोक मे पडी रह गई। ऐसे पतिप्रेम और आत्मोत्सर्ग की तुलना है कहीं ? इस घटना का स्मरण आने से ही देह और मन पुलकित होकर कण्टकित हो जाता है। बालमुकुन्द की गृहिणी ! तुम धन्य हो। ऐसी स्त्री के बिना क्या ऐसा स्वामी हो सकता है ! हाय रे भारत के नसीब, ऐसी स्त्री और ऐसा स्वामी भी तुझे न बदा था !

नवाँ परिच्छेद

काशी केन्द्र की कहानी

इस बार पंजाब मे नया उत्साह लेकर लौटने पर भी काशी आने पर मुझे ऐसा जँचा मानों अब तक बहुत अनाचार और अनियमों में था । मैं नहीं कह सकता कि पंजाब के मुकाबले में काशी कितनी मनोहर और पुनीत मालूम हुई । मालूम नहीं कि ऐसा क्यो हुआ, किन्तु इस मर्तबा काशी के जिस स्निग्ध रूप का अनुभव किया था उस का अनुभव काशी में मुद्दत से रहने पर भी मुझे नहीं हुआ था । देह में काशी की हवा लगते ही ऐसा मालूम हुआ कि बहुत दिनों की अपवित्र देह शुद्ध हो गई । काशी में सिर्फ एक दिन रहने से ही ऐसा जान पड़ा कि बहुत दिनों की सञ्चित ग्लानि दूर हो गई ।

बलवे की तैयारी व्यर्थ हो जाने पर रासविहारी जब काशी में वापिस आये तब उनके मन में भी बिल्कुल ऐसा ही भाव हुआ था ।

काशी लौट आने पर पूर्व बङ्गाल के एक नेता से भेंट हुई । हमारे पूर्व परिचित एक नेता इस से पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे । इसी से, ऐसी आशा के दिन, सभी पूर्व परिचित पुरुषों के जेल में चले जाने से मुझे एक अनिर्दिष्ट वेदना हो रही थी, इतने काम काज के बीच ज्यों ही थोड़ी सी फ़ुरसत मिल जाती त्यों ही अक्सर यह विचार होने लगता कि आज वे लोग क्यों हमारे साथ नहीं हैं । उस आनन्द को उस दिन सभी के साथ न लूट सकने से जब तब वह विच्छेद प्राणों को बहुत ही सताने लगता था ।

कलकत्ता विभाग के एक सुप्रसिद्ध नेता, श्रीयुत यतीन्द्रनाथ मुखोपध्याय, इन्हीं दिनो काशी आये। विप्लव-युग के श्रेष्ठ कार्य कर्ताओं के बीच इन का स्थान बहुत उच्च है। इतिहास मे अक्सर देखा जाता है कि जब कोई नया आन्दोलन समाज अथवा राष्ट्र की इच्छा के विरुद्ध सिर उठाता है तब वैसे आन्दोलन के जो लोग प्राण स्वरूप होते हैं उनका चरित्र अनन्य साधारण हुए बिना वह आन्दोलन कारगर नहीं हो सकता। इसी से जिस समय कोई सम्प्रदाय राज रोष में दग्ध किया जाता अथवा समाज के निग्रह मे पीसा जाता है उस समय भी उस सम्प्रदाय के व्यक्तियो के चरित्र मे कुछ न कुछ विशेषता अवश्य रहती है। यही कारण है कि ऐसे सम्प्रदायो की सदस्य सख्या स्वल्प होते हुए भी समाज पर उनका कुछ कम प्रभाव नहीं पडता। विगत विप्लव के इतिहास से भी इस सत्य तत्व की सचाई सिद्ध हुई है। यतीन्द्र बाबू ऐसे ही सम्प्रदाय के प्राण स्वरूप थे और कई विभिन्न सम्प्रदायो पर उन्होंने अपने चरित्र बल से अपना सुदृढ़ आधिपत्य जमा लिया था।

बलवे का काम काज बहुत ही गुप्त रीति से करना पडता था और वैसे वैसे शक्तिशाली महापुरुषो की सर्वग्राही प्रतिभा का आश्रय न मिलने से भारत के विभिन्न स्थानो मे बलवे के लिए भिन्न भिन्न कितने ही दल बन गये थे। उन का शायद अब तक भली भान्ति पता भी नहीं लगा। छोटे छोटे स्वतन्त्र दल हो जाने से भला हुआ या बुरा, यह कहना कठिन है।

इन विभिन्न दलो को सम्मिलित करके एक विराट् दल के रूप में परिणत करने का उद्योग बहुत दिनो से किया जा

रहा था किन्तु कोई शक्तिशाली नेता न रहने से किसी भी दल ने दूसरे दल में मिल कर अपनी स्वतन्त्रता को खो डालना स्वीकार नहीं किया। और इन दलों के मुखिया लोग ही अक्सर अपने साधारण आधिपत्य को बनाये रखने के लिए ऐसे मिलन के विरोधी थे। 'मनुष्य सहज ही पराई अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं हो जाता, फिर सचमुच शक्तिशाली पुरुष के आगे उसे माथा झुकाना ही पड़ता है।' जिस समय किसी अभिनव आदर्श अथवा विचित्र कार्य की प्रेरणा से मनुष्य जाग पड़ता है उस समय ये सारे तुच्छ व्यक्तिगत अहङ्कार और स्वार्थपरताएँ फिर सिर नहीं उठा सकतीं।

यतीन्द्र बाबू का नेतृत्व इस ढंग का था कि जिस के प्रभाव से बङ्गाल के बहुत से छोटे छोटे दल एक में मिल गये थे। यद्यपि यतीन्द्र बाबू कोई धुरन्धर विद्वान् नहीं थे किन्तु इन के चरित्र के प्रभाव से बहुतेरे शिक्षित युवकों ने इन्हें आत्मसमर्पण कर दिया था। इन में जैसा अतुल साहस था वैसे ही इन के प्राण भी उदार थे। इन के चरित्र बल की बातें बङ्गाल के विप्लव पन्थी लोगों को भली भांति मालूम हैं। किन्तु इन भिन्न भिन्न दलों का एक सूत्र में आबद्ध होना उसी दिन सम्भव हुआ जिस दिन कि पंजाब में गदर होने की तैयारी के समाचार से एक नये काम की प्रेरणा ने उन सब को उतावला कर दिया था। किन्तु फिर भी इस मिलन-कार्य में यतीन्द्र बाबू का चरित्र बहुत ही सुन्दर रूप में प्रकट हुआ है। क्योंकि दल के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में कुछ इने गिने ही आदमी न थे। इन

सब का स्वभाव और चरित्र मामूली आदमियों के जैसा नहीं था। उन सब के मन पर आधिपत्य कर लेना कुछ मामूली शक्ति का काम नहीं है।

सच तो यह है कि बङ्गाल में इस समय बलवे का उद्योग करने वाले दो ही दल थे। इन मे से एक के मुखिया यतीन्द्र बाबू थे। दूसरे दल के दो भाग किये जा सकते हैं, एक बङ्गाल के बाहर काम करता था और दूसरे ने बङ्गाल के भीतर ही अपना कार्यक्षेत्र बना रक्खा था। बङ्गाल के बाहर की कुछ जिम्मेदारी रासबिहारी को दी गई थी, किन्तु बङ्गाल के भीतर जो काम हो रहा था उस का भार किसी एक व्यक्ति पर न था।

यतीन्द्र बाबू काशी इस लिए बुलाये गये थे जिस मे कि सारा उत्तर भारत एक सूत्र में और एक सुर में कर लिया जाय। इस प्रकार पजाब के सीमान्त प्रदेश से लेकर पूर्व बङ्गाल और आसाम की सीमा तक समूचा देश एक सङ्गठन में रह कर चलने के लिए तैयार हो रहा था। पजाब के सिपाही इस समय कुछ कर दिखाने के लिए ऐसे उतावले हो गये थे कि अब किसी भी तरह उन्हे शान्त न रखा जा सकता था। मैं नहीं कह सकता कि इस प्रकार उन्हे सयत कर देना अच्छा हुआ या बुरा, क्योंकि यदि हम लोगो की रोक टाक न रहती तो पजाब में अवश्य ही कुछ न कुछ भीषण घटना हो जाती और कौन कह सकता है कि उस का फल क्या और कैसा होता। हम लोगों ने उन को जल्दबाज़ी को इस लिए रोका था कि सारा देश एक मत से बलवे के ताण्डव नृत्य में सम्मिलित हो जाय।

मालूम नहीं, यतीन्द्र बाबू के काशी आने का हाल सरकार को कुछ ज्ञात हुआ था या नहीं, और यदि ज्ञात हुआ तो कितना। मैं बतलाता हूँ कि यहां पर उस बात का उल्लेख मैंने किस लिए किया है। यहाँ तक मैंने जो कुछ लिखा है उस में एक भी गुप्त बात प्रकट नहीं की गई, यहाँ तो मैंने उन्हीं घटनाओं का उल्लेख किया है जिन पर कि षड्यन्त्र सम्बन्धी मुकदमों में प्रकाश पड़ चुका है और जो अदालतों में प्रमाणित हो चुकीं हैं। कुछ बातें तो ऐसी भी हैं जिन्हें सरकारी पक्ष ठीक ठीक नहीं जानता किन्तु इन घटनाओं को भी मैंने छोड़ दिया है। क्योंकि उन घटनाओं को समर्थन करने योग्य उपयुक्त प्रमाण इस समय तक सरकार के पास नहीं है। जिन घटनाओं के प्रकट होने से किसी पर तनिक भी आँच आने की सम्भावना नहीं है और जिन्हें सरकार तो भली भाँति जानती है किन्तु हमारे देशवासी जिन के अत्यन्त अस्पष्ट आभास के सिवा और कुछ भी नहीं जानते ऐसी ही घटनाओं का वर्णन मैं अपनी क्षीण शक्ति के अनुसार करना चाहता हूँ। विगत युद्ध के समय भारत मे जो षड्यन्त्र संबन्धी मुकदमें हुए थे उन की सुनाई अधिकतर जेलों में ही हुई थी, इन मुकदमों का कच्चा हाल जनता को प्रायः मालूम ही नहीं हुआ क्योंकि पुलिस और न्यायकर्ता को जो समाचार पसन्द न होता था, तथा न्यायकर्ताओं के सामने जो प्रमाणित तक हो चुका था वह भी प्रकट न किया जाता था इन कारणों से वे घटनाएँ बहुतों के लिए बिलकुल ही नई होंगी। मैं सिर्फ यही चाहता हूँ कि जो बातें सरकार तक पहुँच गई हैं उन से जनता भी परिचित हो जाय। जो सचमुच

एक दिन देश मे हुआ था और जिस को जान लेने से अपनी शक्ति-सामर्थ्य का ज्ञान हो जाता है, और यह भी मालूम हो जाता है कि किस जगह हमारी दुर्बलता थी, कहाँ हम ने दुर्बुद्धि का परिचय दिया था और किस स्थान पर हमारे मन की सङ्कीर्णता तथा कार्य की त्रुटि प्रकट हुई थी—इसी से मैं उन घटनाओं पर नि सङ्कोच होकर प्रकाश डालना चाहता हूँ। इस से हमारा भला ही होगा, तनिक सी भी बुराई न होगी। देश में बलवे की जैसी प्रचण्ड तैयारी हुई थी उसे छिपाने की अब कुछ आवश्यकता नहीं जंचती । मैं तो चाहता हूं कि देशवासियों को उस का रत्ती रत्ती भर हाल मालूम हो जाय। मेरी पुस्तक समाप्त होने पर देशवासियो को मालूम होगा कि गदर की तैयारी इने गिने लड़कों और नवयुवकों के मन की लहर ही न थी, अथवा इस की तैयारी कुछ ऐसे अव्यवस्थित रूप में न हुई थी जैसा कि रौलट रिपोर्ट मे प्रकट किया गया है। रौलट रिपोर्ट तो इस दृष्टि से लिखी गई है जिस से कि भारतवासियों को आत्म-शक्ति पर विश्वास न होने पावे और उस मे घटनाओं का वर्णन इस ढग पर किया गया है जिस से कि दमन नीति को सहायता मिले। इस रिपोर्ट मे बहुत सी बातें बढ़ा कर लिखी गई हैं, किन्तु इन में यह बढ़ाना बिलकुल तुच्छ विषयों को दिया गया है और यह काम इस ढग से किया गया है जिस से कि विप्लववादी लोग देशवासियों की नजर मे हास्यास्पद जँचें। फिर ऐसी खास खास बातें बड़ी सफाई से दबा दी गई हैं कि जिन के प्रकट होने से देशवासियों के मन में आशा का सञ्चार हो सकता है । रौलट रिपोर्ट पढ़ने से हर्गिज़ नहीं मालूम होसकता कि

कितने समय से बडी सावधानी के साथ बहुत ही धीरे धार कितने रत्न किस प्रकार इकट्ठे किये गये थे, फिर कितने दु खो और कष्टो के बीच होकर कितने भीतरी बाहरी निर्यातनों की कसौटी से जाँच कर के, कितनी नीरव वीरताओं की महिमा से मण्डित हो कर इन रत्नों की माला गूँथी गई थी। मुझे तो इसी बात का दु ख है कि उन सारी बातों को उपयुक्त रूप में प्रकट करने योग्य शक्ति मुझ मे नहीं है, तथापि जैसा मुझ से बनता है, करता हूँ।

बहुत लोग यह सोचेंगे कि इस प्रकार सारी बातें प्रकट कर देने से (मानों ये बातें अभी तक गुप्त हैं।) सरकारी पक्ष को दमन-नीति का प्रयोग करने के लिए मौका दिया जायगा। किन्तु इस के उत्तर में मुझे यही कहना है कि बलवे की जो आग एक दिन सिर्फ बङ्गाल के एक प्रान्त की सीमा के ही भीतर थी उसी की अग्निशिखा १६-१७ वर्ष की दमननीति का ईंधन पा कर, रावलपिण्डी और पेशावर तक फैल गई थी, अतएव जो लोग इस दमननीति की जड उखाडना चाहते हो उन से मेरा यही वक्तव्य है कि विगत युग के बलवे की तैयारी के प्रयत्न को मजाक मे उडा कर नाचीज कहने या उस के अस्तित्व को ही अस्वीकार करने की कृपा न कीजिए, प्रत्युत सरकार को भली भाति समझा दीजिए कि देश की सच्ची आकाँक्षा को दबाने का उद्योग करने से, अथवा वैध आन्दोलन का विकास होने के लिए मौका और समय न देने से, इस प्रकार गुप्त प्रलयाग्नि का उत्पन्न होना अनिवार्य है। वैध प्रकाश्य आन्दोलन की अपेक्षा छिप कर बल्वे का उद्योग करना कम शक्तिशाली नहीं जान पडता। इँग्लैंड में प्रकाश्य आन्दोलन करने का सुभीता रहने के

कारण—फिर वह आन्दोलन कितना ही उग्र क्यों न हो—वहाँ गुप्त रूप से वलवे का उद्योग उतने ही परिमाण में नहीं किया जाता जितने परिमाण में कि फ्रांस अथवा यूरप के अन्यान्य देशों में किया जाता है। मरणोन्मुख जाति ही दमनास्त्र से वश मे कर ली जाती है किन्तु विकाशोन्मुख जाति के आत्म प्रकाश करने के उपायों को किसी भी दमनास्त्र द्वारा व्यर्थ नहीं किया जा सकता। आज यह वात क्या सरकार और क्या भारत की जनता, सभी को अच्छी तरह जाननी चाहिए।

यतीन्द्र वावू अव इस लोक मे नहीं हैं, इसी से उन की वात प्रकट करने मे मैंने सङ्कोच नहीं किया। शायद हमारे देशवासियों को ठीक ठीक मालूम नहीं कि इस समय हम लोग सारे उत्तरी भारत में एक दिल से और एक ही उद्देश्य के लिए काम कर रहे थे, और शायद वङ्गाल के विप्लवकारी दलों को भी इस का सोलहों आने पता न था।

यतीन्द्र वावू का विशेष रूप से अनुरोध था कि इस वलवे के लिए निर्धारित दिन इतना पीछे हटा दिया जाय जिस मे कि वंगाल मे पहुँचने पर उन्हें कम से कम दो महीने का समय मिले और इस वीच वे कुछ रुपये पैसे भी एकत्र कर सकें। उन्होंने वार वार कहा कि विना हाथ मे काफी पूँजी लिए इस काम में कूदना ठीक नहीं, किन्तु उन की इस 'काफी' की धारणा की सीमा वड़ी लम्वी चौड़ी थी। उतने अपरिमित द्रव्य का थोड़े समय में संग्रह किया जाना भी असाध्य काम था, इस वात को अन्त मे यतीन्द्र वावू ने स्वीकार कर लिया था किन्तु इस ओर की दशा को वे ठीक ठीक समझ न सकते थे। उस समय पंजाव के सिपाही वहुत ही अधी-

हो रहे थे। इस का एक कारण यह अनिश्चय था कि वे न जाने किस दिन पश्चिम के रणक्षेत्र में भेज दिये जायँ, इस के सिवा भारत के विभिन्न सैनिक दलों को भी लगातार एक छोर के स्थान से दूसरे छोर के स्थान में बदल कर भेज दिया जाता था। इसी लिए, अनुकूल दशा में न रहने दिये जाने पर, यदि उन सैनिकों को सुदूर दक्षिण की किसी छावनी में भेज दिया जाय तब तो उन की सारी आशाओं पर पाला पड़ जायगा। ऐसे ही अनेक कारणों से पल्टन के सिपाहियों को शान्त रखना जिस प्रकार दुरूह कार्य हो गया था उसी प्रकार हमें भी यह बड़ा खटका था कि चलने के लिए प्रस्तुत किये गये सैनिक कहीं अन्यत्र न भेज दिये जाँय। इन कारणों से हम लोग यतीन्द्र बाबू के अनुरोध को न मान सके। हम लोग भी कुछ कुछ उद्विग्न हो गये थे कि ऐसा बढ़िया मौका किसी कारण हाथ से न निकल जाय। इसी से एक ओर तो हम सिपाहियों को शान्त रखने का उद्योग कर रहे थे और दूसरी ओर ऐसी तैयारी में लगे हुए थे जिस से कि देश भर में एक-जी होकर कुछ कर दिखाया जाय, साथ ही यह भी ध्यान रक्खा गया था कि इस काम में वृथा विलम्ब न होने पावे। यतीन्द्र बाबू से भी ये सारी बातें समझा कर कही गईं और लाचारी से उन लोगों को भी हमारे साथ ही साथ समान भाव से कदम बढाना पडा।

इस कार्य की ओर विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया था। हम लोगों का विचार था- कि पहले देश के शिक्षित युवकों को सम्मिलित करके देश-व्यापी एक विराट् संघ का सङ्गठन कर लिया जाय और फिर यदि देशी फ़ौजों को अपने भाव की दीक्षा दे दीं जा सके तभी बलवे की नींव पक्की होगी, किन्तु इस तैयारी के साथ साथ हम लोगों ने विदेशियों से कुछ भी सम्पर्क नहीं रक्खा,—मगर गदर के उद्योग में यही बड़ी भारी भूल थी। कई मर्तबा यह विचार भी हुआ था कि इस तैयारी के साथ साथ अधिक परिमाण में अस्त्र-शस्त्रों के मँगाने का भी बन्दोवस्त होना चाहिए किन्तु नेता लोग इस ओर से उदासीन थे। वे कहते थे कि वह समय अभी दूर है। किन्तु जब समय आया तब फिर न इस का बन्दोवस्त करने का समय रहा और न कोई जरिया ही मिला। सारे देश में तो नहीं, किन्तु बङ्गाल और पंजाब में युवकों का जो संघ बनाया गया था उस की व्यापकता कुछ कम न थी किन्तु इस संघ का विकास और परिणिति बङ्गाल में जैसा हुई थी वैसी और कहीं भी नहीं हुई। व्यक्ति के भीतरी गठन और कुछ-समय-व्यापी साहचर्य के फल से यह संघशक्ति जैसी परिस्फुटित होती है वैसी और किसी तरह नहीं होती। यही कारण है कि सच्ची संघशक्ति बङ्गाल में ही गठित हुई थी, क्योंकि पंजाब में जो बलवे की तैयारी हुई थी उस का कुल बन्दोवस्त तो खास कर उन सिक्खों ने किया था जो कि अमेरिका प्रभृति देशों से लौट कर भारत में आए थे। इन विदेश से आये हुए सिक्खों के साथ देश का वैसा घना

हेल मेल न था। और भिन्न भिन्न व्यक्तियों के कुछ-काल-व्यापी साहचर्य से यह दल सङ्गठित भी नहीं हुआ था। देशवासी लोग भी उन की ओर से कुछ लापरवा थे, किन्तु अपने दल से बङ्गाल की जनता इतनी उदासीन नहीं थी। इस के सिवा जिन व्यक्तियों के सहयोग से संघ सङ्गठित होता है उन के मन और प्राणों में आदर्श की प्रेरणा जितनी गम्भीर होगी और उस आदर्श का ठाठ जितना ऊंचा बाँधा जायगा उसी परिमाण में संघ भी शक्तिशाली होगा। इस दृष्टि से बङ्गाल के बाहर का कोई भी संघ बङ्गाल की संघशक्ति के जैसा शक्तिशाली न था,—बंगाल में भिन्न भिन्न आदर्शों के घात प्रतिघात की क्रीड़ा जैसे अभिनव रूप में देख पड़ी वैसी बंगाल के बाहर देखने में नहीं आई। हमारी इस बलवे की तैयारी के साथ भारत के जातीय जागरण का भिन्न भिन्न ओर से क्या सम्बन्ध था और विप्लववादियों के व्यक्तिगत जीवन में वह किस प्रकार प्रतिफलित हुआ था—इस की चर्चा वहाँ होगी जहाँ बंगाल का वर्णन किया जायगा। इस का प्रधान कारण यह है कि उस आदर्श के द्वन्द्व का जैसा अनुभव मुझे बङ्गाल में हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं हुआ, और यहाँ तो मैं मुख्यरूप से बङ्गाल के बाहरी प्रदेश के आन्दोलन का वर्णन कर रहा हूँ। बङ्गाल के बाहर तो हम लोग प्रधानतया बलवे की तैयारी की मामूली बातों में ही लगे हुए थे किन्तु बङ्गाल में मानो भारत के वास्तविक जातीय जागरण के लिए क्या धर्म क्या कर्म क्या साहित्य और सामाजिक आचार-विचार सभी कामों में हम लोग लिप्त थे।

अन्यान्य प्रदेश वालों को जिस प्रकार फौजों में भर्ती होने का सुभीता रहता आया है वैसा सुभीता यदि बंगाल में बंगालियों को होता तो यहाँ न जाने कब का गदर मच गया होता किन्तु वर्तमान समय में, पंजाब में जिस फुर्ती से बलवे की तैयारी हो रही थी उस को देखते हुए हम लोग सोचते थे कि बंगाल न जाने इस समय किस प्रकार बलवे में शामिल होगा। बंगाल के पिछले युग के कलङ्क का स्मरण होने से मेरे मन में बड़ा कष्ट होता था। यही कारण था कि बंगाल में जाकर काम करने की इच्छा होती थी। इस से यतीन्द्र बाबू वगैरह जब बंगाल को वापिस चले गये तब वहाँ जाने के लिए मैं विशेष रूप से उत्सुक हुआ, किन्तु दादा इस के लिए किसी प्रकार राजी न हुए। उन्होंने कहा वे तो स्वयं पंजाब जाँयगे और मुझे बंगाल और पंजाब के मध्यदेश में रह कर उक्त दोनों प्रदेशों की कार्रवाई का सिलसिला जोड़े रखना होगा। इस से मन मार कर मुझे काशी में ही रहना पड़ा।

इसी समय बंगाल मे मोटर-डकैती का आरम्भ हुआ और थोड़े ही समय में कई जगह डाके डाले जाकर बहुत सा धन संग्रह किया गया। इन घटनाओं के कुछ ही दिन पहले रोडा कम्पनी के यहाँ से ५० मोज़र पिस्तौलों और ५० हजार के लगभग टोटों की चोरी हो गई। अब तक बंगाल मे बलवे की तैयारी का कार्य क्रम दो एक दलों में ही आबद्ध था। यतीन्द्र बाबू थे तो खासे कार्य-कुशल किन्तु अब तक कुछ कुछ खाली रहते थे। इस से अन्यान्य दलो का कुछ भी काम काज न होता था। इस बार यतीन्द्र बाबू के पूर्ण उद्यम से काम में जुटते ही

-बङ्गाल में बड़े सपाटे से काम काज होने लगा। उन के इस नये आत्म प्रकाश को देख कर हम लोगों को बड़ा अचरज हुआ।

इधर रासविहारी भी पंजाब को रवाना हुए। उन्हें गिरफ्तार करा देने वाले को साढ़े सात हज़ार रुपये का इनाम बोला गया था। रासविहारी को गिरफ्तार न कर सकने के कारण सरकारी पक्ष की कार्य-कुशलता में बट्टा लग गया था और उन्हें गिरफ्तार करने के लिए भारत सरकार ने कुछ उठा न रक्खा था। एक ओर तो वह प्रबल प्रतापशाली ब्रिटिश राजशक्ति थी जिस के कि अपार धन-बल और लोकबल है जो इतने बड़े सुनियन्त्रित राज्य की चालक है, देश के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक जिस का अद्भुत संगठन (Organisation) है, और जिस के जासूस विभाग की होशियारी की तुलना रूस के सिवा एशिया में किसी से भी नहीं हो सकती, और दूसरी ओर था भारत का दरिद्र विप्लव-दल—इतना दरिद्र कि एक दिन रासविहारी ने हम लोगों से कहा कि 'मुझे अँगरेजों के हवाले कर के साढ़े सात हज़ार रुपये वसूल कर लो'—और जिस के साथ देशवासियों की आन्तरिक सहानुभूति तो थी किन्तु वे डर के मारे किसी भी तरह सहायता करने को तैयार न थे, तथा जिस दल के नेता समाज में बिलकुल ही अपरिचित थे, सौ बात की एक बात यह कि लोग बिलकुल ही असहाय थे, जिन का बल और भरोसा था केवल मात्र अपना असीम विश्वास तथा चित्त की अद्भुत दृढ़ता और अपने घर में ही जिन की उपेक्षा स्वदेशवासी करते थे,—ऐसे दो दलों के असम द्वन्द्व में विप्लव दल ने बहुत

दिनो तक केवल आत्मरक्षा ही नहीं की थी, बल्कि उस ने अंगरेज सरकार को भी कितने ही नाच नचा दिये थे; और इस प्रकार प्रवल अँगरेज-शक्ति जो रासविहारी को गिरफ्तार नहीं कर सकी इस का प्रधान कारण था हमारे सघ की व्यापकता और बहुत यढ़िया बन्दोबस्त । उपयुक्त शक्तिशाली सुनियन्त्रित संघ न होता तो रासविहारी को बचा लेना कदापि सम्भव न था । इस मे सन्देह नहीं कि इतने पर भी रासविहारी की कुशलता और उन का भाग्य कुछ कम सहायक नहीं हुआ । कितने ही भीषण सङ्कट के अवसरो पर उन्हें सहज ही छुटकारा मिल गया था । अब उन बातों के मालूम होने से देह मे रोमाञ्च हो आता है । इसे भगवान् की विशेष कृपा के सिवा और क्या कहा जाय । इन सब बातो का वर्णन दूसरे भाग मे होगा । एक रासविहारी ही इस प्रकार अपने को छिपाने में सफल न हुए थे, बल्कि और भी कितने ही युवक इसी समय से तथा इस के पीछे से भी प्रवल प्रतिद्वन्द्वी की सारी शक्ति को व्यर्थ करके तीन चार वर्ष तक—और कोई कोई तो इस से भी अधिक समय तक—छिपे रहने मे समर्थ हुए थे । यदि इन भागे हुए लोगो का रहस्य-पूर्ण इतिहास लिखा जाय तो भारत के साहित्य को एक नई सम्पत्ति प्राप्त हो ।

रासविहारी रात की गाडी से दिल्ली होते हुए पंजाब को रवाना हुए । इस समय से प्रायः हर वक्त हम लोगो मे से कोई न कोई रासविहारी के साथ साथ रहता था । दिल्ली पहुँचने तक कोई खास घटना नहीं हुई । गाड़ी जिस समय दिल्ली स्टेशन को पीछे छोड़ कर आगे बढ़ने लगी उस समय रासविहारी ने अक-

स्मात् देखा कि उन के छोटे से डब्बे में उन्हीं की पहचान का खुफिया पुलिस का दरोगा बैठा हुआ है। उस समय रासबिहारी के मन की जो दशा हुई होगी उस को हमें कल्पना से ही जान लेना चाहिए। जो हो, सौभाग्य से उस रात को वे अपने सिर पर टोपी लगाए रहने की बदौलत साफ बच गए और अगला स्टेशन आने पर वे उस डब्बे से उतर कर दूसरे डब्बे में जा बैठे किन्तु गये वे उसी गाड़ी से। इसी से समझ लीजिए कि उन में कितना हियाव था। इस प्रकार बड़ी शान्ति से किन्तु दृढ़ता के साथ रासबिहारी सब बातों को जानते रहने पर भी दहकती हुई आग में कूद पड़े। वे अमृतसर पहुँच गये।

इधर युक्त प्रदेश बिहार और बङ्गाल की भिन्न भिन्न छावनियों में हमारे मनुष्यों ने आना जाना आरम्भ कर दिया। थोड़े ही दिनों में पंजाब से कर्तारसिंह तथा और भी कई सिक्ख पंजाब का समाचार लेकर काशी आये। उस समय उत्तर भारत की तमाम छावनियों का हाल हम ने मालूम कर लिया था। सब स्थानों का समाचार मिलने पर समझ में आ गया था कि उस समय देश भर में गोरी सेना बहुत ही थोड़ी सी थी और जितने गोरे थे भी वे निरे रंगरूट थे। टेरीटोरियल सेना के छोकरों और दुबले पतले लम्बे से नौजवान सिपाहियों को देख कर हम लोग चाहते थे कि अब बहुत जल्द हमें शक्ति की जाँच करने का मौका मिल जाय। उन दिनों समूचे उत्तर भारत की दो तीन बड़ी बड़ी छावनियों और काबुल के सीमान्त देश के सिवा कहीं भी ३०० से अधिक गोरे सिपाही न थे। बड़ी बड़ी छावनियों में भी इन की तादाद एक और दो हजार के बीच में थी। भिन्नभिन्न

छावनियो मे जितने अस्त्र-शस्त्र थे उन की सहायता से कम से कम वर्ष भर तक तो मजे मे युद्ध जारी रक्खा जा सकता था। हम लोगों ने उन सब बातो का रत्ती रत्ती पता लगा लिया था जिन का कि लग सकता था। जैसे—किस रेजीमेंट मे कितने बाक्स राईफल्सें हैं, कारतूसो के कितने बाक्स हैं, मेगजीन पर किन का पहरा रहता है और कैसा पहरा रहता है, इत्यादि। हिन्दुस्तानी फौजो की मानसिक दशा उस समय बहुत ही खराब थी। उन्हें हर घडी पर यह खटका बना रहता था कि बस अब यूरप जाने का हुक्म होता ही है। जो दम गुजरता था गनीमत समझा जाता था। छावनियो मे पहुचते ही हमारे युवको का सिपाही लोग बडा आदर सत्कार करते और बडे आग्रह से उन की बातें सुनते थे, एकबार एक युवक किसी छावनी में गया। तब उसी दिन, रात को वहा के सिपाहियों की बैठक हुई। उस बैठक मे बडे ओहदेदारो के सिवा और सभी सिपाही एकत्र हुए, उस विदेश से आये हुए युवक की बातें उन लोगों ने बडे आग्रह से सुनीं। अन्त में कहा कि इस बलवे में हम लोग अगुआ न बनेंगे, हाँ हम लोग ऐसा जरूर करेंगे जिस में बलवे के समय हमारे हाथ से मैगजीन न निकल जाने पावे। और जब गदर सचमुच मच जायगा तब हम भी शामिल हो जाँयगे।

काशी की रेजीमेंट में मैं और भी कई बार गया था। इस रेजीमेंट में दिल्लासिह के सिवा और सभी अच्छे आदमी थे वे लोग सचमुच देश के भले के लिए बलवे में शामिल होने को तैयार थे। दिल्लासिंह ने एक दिन हम लोगों से पूछा—'बाबू, देश के स्वाधीन हो जाने पर क्या हम लोगों को कुछ

जागीर या माफी वगैरह मिलेगी ? एक दिन गन काटन ले जाकर उसे हम लोगों ने अपनी करामात दिखलाई और कहा कि देखो यह मामूली रुई नहीं है इस में आग छूते ही किस प्रकार भक से तमाम जल उठती है तनिक सी भी बाकी नहीं रहती । यह लीला देख कर वे लोग अचरज करते थे । इस प्रकार हम लोग कई तरह से दिलासिंह और उस के अनुचरों को अपने मत में लाने की कोशिश करते थे । इस रेजीमेंट के कुछ आदमियों से पीछे मेरी भेंट हुई । उन्हों ने बड़े भक्ति भाव से माथा झुका कर मुझसे बात चीत की थी । इनमें एक सिपाही की उम्र ५० से ऊपर थी । उस ने मुझ से कहा—बाबू मेरे साथ के जान पहचान वाले अब कोई भी जीवित नहीं । एक मैं ही रह गया हूँ । सो मेरा समय नजदीक है । बाबू अब मैं मौत से नहीं डरता, तुम्हीं मेरे गुरु होगये, क्योंकि दुनिया के झमेलों से मेरे चित्त को हटा कर तुम्हीं ने भगवान् की ओर कर दिया है ।

कितनी ही रेजीमेंटों में हमारी पहुँच हो चुकने पर उन की अन्य स्थानों में बदली होगई । इस से यह लाभ हुआ कि हमारे कार्य का प्रचार देश में बहुत दूर तक होगया ।

रेजीमेंटों में प्रचार करने के अलावा इसी समय हम ने देहात में जाकर वहाँ की जनता में भी रसाई करने की कोशिश की । युक्त प्रदेश में कुछ ऐसे गाँव हैं जहाँ निरे ठाकुरों की बस्ती है । ऐसे अनेक केन्द्रों से अँगरेजों की फौजों के लिए रँगरूट चुने जाते थे । युक्त प्रदेश और पंजाब के अनपढ़ लोग बंगाल अशिक्षित जनता की भाँति नहीं है । एक तो ये बंगालियों

की अपेक्षा शरीर से बहुत कुछ बलवान् हैं, दूसरे अपने पराने गर्व का स्मरण इन में अब तक यथेष्ट परिमाण में बना है। ये अनपढ़ हैं सही किन्तु राजनैतिक संस्कार इनमें अत्यन्त प्रबल हैं। बंगाल की जनता और शिक्षित सम्प्रदाय की भी अपेक्षा यहां वालों में अपने धर्म पर बहुत अधिक प्रीति और मोह है। सुयोग्य नेता की अधीनता में परिचालित किये जाने से ये अशिक्षित लोग एक बार असम्भव को भी सम्भव कर सकते हैं।

इन लोगों में भी हमारा आवागमन होने लगा था और इन लोगों से भी हम को कुछ कम आशाजनक उत्तर न मिला था।

इधर रासविहारी भी पंजाब में सैनिकों से मेल मुलाकात करने लगे। वे जिस मकान में रहते थे उस में किसी से भी भेंट न करते थे। दूसरों से मिलने जुलने के लिए दो-तीन मकान बिलकुल अलग थे। सिपाहियों से वे ऐसे ही एक अलग मकान में मिला करते थे। इस समय के लाहौर के दो सैनिकों का जो हाल मैंने सुना है वह सदा स्मरण रखने योग्य है। एक का नाम लछमनसिंह था। दूसरा सिपाही मुसलमान था। उस का नाम मुझे याद नहीं। ये दोनों ही हवलदार थे। सिपाहियों पर लछमनसिंह का खासा प्रभाव था। इस रेजीमेन्ट के एक सिपाही से अन्दमान में मेरी बात चीत हुई थी। उस से पता चला कि लछमनसिंह ने बहुत पहले से अपनी रेजीमेंन्ट में एक छोटा सा दल बना रक्खा था। वे बीच बीच में अक्सर एकत्र होते थे। उस समय सिक्ख धर्म सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ी जातीं और अनेक विषयों पर चर्चा इत्यादि होतीं थीं। कई बार इस की खबर पाकर रेजीमेंट के अंगरेज़ हाकिम इस मामले को रोकने का हुक्म दिया

करते थे। इस प्रकार बीच बीच में बन्द हो कर भी वह कार्य छोटे रूप में कई वर्ष से लगातार होता चला आ रहा था। रेजीमेंट में सभी लोग लछमनसिंह को बड़ा धर्मात्मा और उन्नत-चरित का पुरुष समझते थे। लछमनसिंह को फांसी का हुक्म हो चुकने पर जब मुसलमान हवलदार की जान बख्श देने का लालच दे कर कुछ गुप्त 'बातों की टोह लेने की कोशिश की गई और कहा गया कि तुम एक काफ़िर के साथ साथ फांसी पर चढ़ना कैसे पसन्द करोगे, तब मुसलमान हवलदार ने बड़ा बढ़िया उत्तर दिया। उस ने कहा—' अगर मैं लछमनसिंह के साथ साथ फांसी पर टांगा जाऊं तो मुझे बहिश्त मिले"। इस को भी फाँसी होगई।

बलवे का निर्दिष्ट दिन जितना ही समीप आने लगा उतना ही हम लोगों को खटका होने लगा। कि "क्या हम लोग पार पा जायँगे! इतनी बड़ी जिम्मेवारी को क्या हम लोग ले सकेंगे? बलवे के लिए जैसी तैयारी करने की तरकीब हमें सूझ पड़ती थी उस में तो हम लोगों ने कोई कसर रक्खी नहीं किन्तु फिर भी उस बहुत जल्द आने वाले दिन का विचार करने से ही शरीर थर्रा जाता था। पंजाब जाने से पहले दादा भी कई बार यही बात कह चुके थे।

असल में हम लोग यह चाहते थे कि एक दिन एकाएक—बिना ही किसी को अपनी इच्छा बतलाये—उत्तर भारत की छावनियों में तमाम अँगरेज-सैनिकों पर, एक ही दिन और ठीक एक ही समय, एक दम हमला कर दिया जाय और बस रेल पेल के वक्त जो लोग हमारी शरण में आ जायें उन्हें कैद कर लिया

जाय। बलवा रात के वक्त शुरु कर दिया जाय और उसी दम शहर के तार इत्यादि काट कर अँगरेज वालण्टियरों तथा तगड़े पुरुषों को कैद में डाल दिया जाय और फिर खजाना लूट कर के जेल मे कैदी रिहा कर दिए जाँय। इसके पश्चात् उस शहर का इन्तिजाम अपने चुने हुये किसो योग्य पुरुष को सौंप कर तमाम बलवाइयों का दल पंजाब में जा कर एकत्र हो। हम लोग यह न समझे बैठे थे कि गदर मचने पर अन्त तक अँगरेजों के साथ सम्मुख युद्ध में हमारी विजय होती जायगी। किन्तु हमें पक्का भरोसा था कि उल्लिखित रीति के अनुसार एक बार जहाँ गदर मचा तहाँ अन्तर्जातीय एक ऐसी विचित्र दशा उपस्थित हो जायगी कि यदि कम से कम वर्ष भर तक हम इस युद्ध को ठीक ढँग पर जारी रख सकें तो विदेशों की भिन्न भिन्न जातियों के आपसी विद्वेष के फल से और अँगरेजों के शत्रुओं की सहायता से, देश को स्वाधीन कर देना हमारे लिए अत्यन्त कठिन होने पर भी असम्भव न होगा।

एक दिन पंजाब से यह समाचार लेकर कुछ आदमी आये कि बलवे का मुहूर्त पक्का कर लिया गया है। २१ फरवरी को बलवा मचा दिया जायगा। काम रात को ही आरम्भ होगा। इतवार को मुझे यह सूचना मिली थी। लहमे भर में तीव्र आवेग से देह और मन न जाने कैसे भाव से कम्पित हो उठे। वह ऐसा विचित्र भाव था जिस का कभी अनुभव नहीं हुआ। न वह आनन्द कहा जा सकता है और न आशङ्का ही। बलवे का आरम्भ होने के लिए अब एक हफ्ते भर की देर थी। अपने अन्यान्य स्थानों को भी बलवे की तारीख की सूचना दे दी गई।

बहुत ही शीघ्र होने वाले इस बलवे की तैयारी में हम में से बहुतो के मन में एक अनिर्देश्य भय और सन्देह का भाव विद्यमान था, मानो किसी भी तरह बलवा हो जाने का नि सन्देह विश्वास न कर सकते थे। सैकडो हजारों वर्ष की दीनता और हीनता से, पराधीनता की हजारों तहो मे लिपटे रहने से, आत्म-शक्ति को हम यहाँ तक खो बैठे थे कि स्वाधीनता के पूर्ण आदर्श की कल्पना कर लेने और उस आदर्श को वास्तविक रूप देने की भरसक चेष्टा कर चुकने पर भी अपनी बहुत बहुत इच्छा रहते हुए भी, हम मानो यह विश्वास न कर सकते थे कि सचमुच बलवे का झण्डा खडा कर दिया जायगा। जन्म का दुखिया जिस प्रकार किसी भी तरह यह विश्वास नहीं कर सकता कि किसी दिन उस का भी नसीब जागेगा,—उसे सुख मिलेगा,—जो सदा लापरवाही से दूर किया गया है, जो बार बार धोखा खा चुका है, ऐसा व्यक्ति आशा की कल्पना से मुग्ध होकर जीवन बिता सकने पर भी किसी भी तरह यह विश्वास नही कर सकता कि किसी दिन वह भी फिर किसी का प्रेमास्पद होगा, इसी तरह मैं भी भारत के भाग्योदय के सम्बन्ध मे हताश हो चुका था।

दसवां परिच्छेद

विश्वासघातकता और निराशा

मन मे ऐसा भाव रहने पर भी बलवे की तैयारियाँ होने लगीं। बङ्गाल के भिन्न भिन्न केन्द्रों में काम करने वाले विप्लव-वादियों के लिए हाफ पैंट सिलवाये गये। पंजाब में भारत की जातीय पताका बना ली गई। उस पताका के रङ्गों में अपनी विशेषता सूचित करने वाले खास रङ्ग को स्थान दिलाने के लिए सिक्खों ने बड़ा आग्रह किया। इस लिए हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख और भारत की अन्यान्य जातियों के चिन्ह स्वरूप भारत की जातीय पताका चार रङ्गों की हुई। कहीं रसद का बन्दोबस्त हुआ, कहीं कहीं पर स्थानीय मोटर लारी प्रभृति सवारियों की फेहरिस्तें बनाई जाने लगीं। उत्तर भारत के समग्र विप्लव-पन्थी बड़े ही उद्वेग से पंजाब की ओर देख कर दिन गिनने लगे, मानो पंजाब से इशारा मिलते ही लहमे भर में ज्वालामुखी पर्वत भीषण आग उगलने लगेगा। सुना गया था कि कदाचित् श्री श्री महाप्रभु जगबन्धु* ने कहा था कि १२ वर्ष की तपस्या के पश्चात् जिस दिन वे अपनी गुफा से बाहर निकलेंगे उसी दिन से भारत की स्वाधीनता का युग आरम्भ हो जायगा। सो वे भी, शायद, इसी १९१५ ईसवी के फरवरी महीने में अपनी गुफा से बाहर आगये। इस बलवे का हाल उन्हें रत्ती भर भी मालूम न था। किन्तु गुफा के बाहर आने पर उन्हों ने सङ्केत से बतलाया कि अभी तो कुछ

---

*ये बंगाल के एक पहुंचे हुए महात्मा हैं। बाल्यावस्था से ही ये साधना कर रहे हैं।

देर है, यह कह कर वे फिर अपनी गुफा में चले गये । भगवान् का अभिप्राय हर वक्त ठीक ठीक समझ में नहीं आता । हजारों वर्ष से भारत का सारा पुरुषार्थ जिस तरह बार बार व्यर्थ होता रहा है उसी तरह इस बार भी समग्र उत्तर भारत की बलवे की इतनी बड़ी इमारत 'भरभरा कर गिर पड़ी । कुसुमकली को खिलने के पहले ही मानो वृन्त से तोड़ कर देवता की पूजा में चढ़ा दिया गया । सुनिए यह क्यों कर हुआ ।

पंजाब के खुफिया पुलिस महकमे के एक मुसलमान डेपुटी सुपरिंटेंडेंट ने कृपालसिंह नाम के एक सिक्ख को विप्लव दल में भर्ती करा दिया । यह उक्त अफसर का जासूस था । रिश्ते में कृपालसिंह का एक भाई होता था जो कि अंगरेजों की फौज में नौकर था और इस दल में भी शामिल था । प्रधानतया इसी सैनिक की सहायता से कृपालसिंह का सम्भवत फरवरी महीने में इस दल में प्रवेश हुआ था। किन्तु इस के कुछ ही दिन बाद कृपालसिंह की गतिविधि पर बहुत लोगों का सन्देह हो गया । तब कुछ नेताओं की सलाह हुई कि उस पर हर दम नजर रहनी चाहिए । इस का फल यह हुआ कि दो चार दिन में ही इस का पुलिस के हाकिमों के पास प्रति दिन एक निर्धारित समय पर आना जाना देख लिया गया । इधर बलवे का झण्डा खड़ा करने को दो चार दिन की देर रह गई थी। इस लिए सोचा गया कि इस दशा में यदि इसे दुनिया से हटा दिया जाय तो ऐसी विकट गड़बड़ मच सकती है जिस से कि शायद हमारे अन्तिम मनोरथ की सिद्धि में बेढब विघ्न आ पड़े। इसी आशङ्का के मारे इस काटे को निकालने का कुछ भी उद्योग नहीं किया गया। ऐसी दशा में

पूर्व बङ्गाल वाले उन्हें दुनिया के झंझटों से छुड़ाये बिना कभी न मानते। जो हो, पीछे से पता चला कि बलवे के लिए जो दिन मुकर्रर किया गया था उसकी खबर पुलिस को लग चुकी है, क्यों कि कृपालसिंह से वह दिन छिपाया नहीं गया था। अतएव निश्चय हुआ कि कृपालसिंह अब घर से बाहर न जाने पावे और बलवे की तारीख २१ फरवरी के बदले १९ फरवरी—यानी दो दिन पहले—कर दी गई। किन्तु अभाग्य से हो या होनहार के कारण हो,—कुछ भी कहिए—इस नई तारीख की सूचना छावनी में दे आने का काम जिन्हें सौंपा गया था उन्हों ने उक्त संवाद छावनी में पहुँचा कर जब रासबिहारी से कहा "छावनी में १९ फरवरी की इत्तिला दे आया" तब कृपालसिंह वहीं बैठा हुआ था। कृपालसिंह का हाल सब लोगों को मालूम न था। शायद यह घटना १८ फरवरी की है। उसी दिन दोपहर के लगभग जब भोजन करने के लिए सब लोग इधर उधर चले गये तब कृपालसिंह ने वहाँ से टरक जाना चाहा। किन्तु उस पर नजर रखने के लिए जिनकी नियुक्ति कर दी गई थी उन्हों ने उसका हाथ पकड़ कर खींच-तान नहीं की, बल्कि हर वक्त उस के साथ बने रहे। कृपालसिंह ने मकान के बाहर आते ही देखा कि भेदिया पुलिस का एक आदमी साइकल पर बैठ उसी ओर आ रहा है। उससे कृपालसिंह की मुलाकात होते ही १९ फरवरी की इत्तला पुलिस को मिल गई और इस के कुछ घण्टे बाद धर पकड़ शुरू हो गई। जिस मकान में कृपालसिंह था उस में ७-८ गिरफ्तारियाँ हुईं। इस में कुछ मुखिया भी थे। जिस मकान में रासबिहारी रहते थे उस का पता दो एक मुखियों

और किसी को मालूम न था, क्यों कि जिन से मिलने-जुलने की जरूरत होती उन से रासबिहारी अन्यान्य मकानों मे ही मिलते थे। इधर मैगज़ीन पर देशी सिपाहियों के बदले गोरों का पहरा होगया। शहर के अँगरेज़ वालण्टियर फ़ौजी तैयारी से लैस कर दिये गये। उन सब को कैम्प बना कर रहने का हुक्म होगया। युद्ध के समय चौकन्ने होकर रहने की जिस प्रणाली को 'पिकेट'करना कहते है उस प्रणाली से गोरे सिपाही और वालण्टियर लोग पहरा देने लगे। हथियारबन्द गोरे सिपाहियों की टोलियाँ फ़ौजी ढँग से बस्ती भर में चक्कर लगाने लगीं। लाहौर, दिल्ली फिरोज़पुर सभी जगह ऐसा ही हुआ। लोगों ने समझा कि इस फ़ौजी तैयारी का कारण यूरोपीय युद्ध का कोई खटका होगा। देशी सिपाहियों के मन में घबराहट छा गई (उन्हीं के जो कि साजिश में थे) इधर बलवे की तारीख दो दिन पहले कर देने से देहात के सब लोग अपने अपने निर्दिष्ट स्थानों में एकत्र नहीं हो सके। सिर्फ कर्त्तारसिंह ७०--८० आदमियों के साथ फ़िरोज़पुर की छावनी में, जैसा कि पहले निश्चय हो चुका था, पहुंच गये। उस समय वहाँ भी वही हाल था जैसा लाहौर में हो रहा था,—देशी सिपाहियों को हटा कर गोरों के अधिकार में मैगज़ीन दे दिया था, गोरे सिपाही बड़ी मुस्तैदी से पहरा दे रहे थे। किन्तु कर्त्तारसिंह को लाहौर की नई घटना का कोई समाचार नहीं मिला था।

बारकों में ऐसी चौकसी रहने पर भी कर्त्तारसिंह आकर काली पलटन के हवलदार से मिले। हवलदार-ने कहा कि अब कुछ दिन तक इन्तज़ारी किये बिना हम लोग कुछ भी नहीं कर

सकते, क्योंकि ऐसी दशा में यदि कुछ किया जायगा तो सत्यानाश हो जायगा इस से कर्त्तारसिंह ने समझ लिया कि इस बार अब कुछ होने की आशा नहीं। उन्होंने ताड़ लिया कि दो ही चार दिन में कैसी दशा हो जाने वाली है। उन्होंने कई तरह से सैनिकों को व्यर्थ समझाने का उद्योग किया कि यदि आज इसी दम कुछ न किया जायगा तो फिर और कुछ होने का नहीं, यही पहला और आख़िरी मौक़ा है। सिपाहियों ने अँगरेज पहरेदारों की ओर उँगली से इशारा कर के कहा कि इस समय कुछ कर गुजरने की कोशिश बिलकुल बेकार होगी। आँखों देखते भला मक्खी कैसी निगली जा सक्ती है, जान-बूझ कर कैसे आग में कूदा जाय। उस दिन भारतवासियो के हाथ में यदि उपयुक्त परिमाण मे अस्त्र शस्त्र होते तो ऐसा विश्वासघात हो जाने पर भी भारत में बलवा किसी के रोके रुक न सकता था। अथवा यदि पहले से ही शिक्षित और उपयुक्त मनुष्य बलवे की दीक्षा लेकर फ़ौजों में भर्ती होते तो भी उस समय की बलवे की तैयारी व्यर्थ न जाती। उस दिन लाचार होकर कर्त्तारसिंह को खाली हाथ लौट जाना पड़ा। देहात के आदमी अपने अपने घर को चले गये। कर्त्तारसिंह लाहौर पहुँचे। अब सारे पंजाब में धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ होने लगीं। जो लोग पकड़े जाते थे उन में से कोई कोई भण्डा फोड़ कर के और भी दस पाँच साथियों का नाम धाम प्रकट करने लगे। इस प्रकार कभी कभी गोरी फौज किसी गाँव को जा घेरती और सब बहुत से आदमी एक ही जगह गिरफ्तार कर लिये जाते। भारतीय सिपाहियों के मन मे एक तरह की बेचैनी देख पड़ी। रावलपिण्डी की एक काली पलटन बरखास्त

कर दी गई। लाहौर में जहाँ तहाँ खाना-तलाशियाँ और गिरफ्तारियाँ होने लगीं। किसी सिक्ख पर ज़रा सा सन्देह होते ही उसे सीधा थाने में पहुँचाया जाता था। इसी तरह पकड़ धकड़ होने में कभी कभी दोनों तरफ से गोली चल जाती थी। दो ही चार दिन में मामला इस तरह सङ्गीन हो गया, अब दल में परस्पर एक दूसरे पर विश्वास करना कठिन हो गया।—कर्त्तारसिंह बुद्धिमान् युवक थे। लाहौर आते ही वे सीधे रासबिहारी के डेरे पर पहुँचे और किसी भी स्थान पर नहीं गये। क्योंकि रासबिहारी वाले मकान को बहुत कम आदमी जानते थे, इसलिए वह सब से अधिक सुरक्षित था। उस समय रासबिहारी बड़ी उदासी से एक खाट पर मुर्दे की तरह पड़े थे। कर्त्तारसिंह भी चुप चाप उन की बग़ल में पड़ी हुई एक खाट पर लेट रहे। थकावट के मारे उन का शरीर शिथिल हो रहा था। दोनों ही चुप थे। उन के उस म्लान मौन से बड़ी निदारुण मर्मस्थान की पीड़ा की बातें प्रकट होने लगीं। हम में से कितने लोगों को जीवन मे इतनी बड़ी चोट सहनी पड़ी है! जिस की कल्पना बहुत बड़ी है, भाव की सघनता और गम्भीरता जिस की जितनी ही अधिक है उस को जीवन में उतनी ही भारी चोट भी लगती है। उन की कितनी बड़ी आशा छिन्न भिन्न हो गई। उन का विराट आयोजन बात की बात में धूल में मिल गया। ऐसी दशा होने पर शिक्षित मन का भाव भी बहुत कुछ बदल जाता है, फिर सिपाहियों के मन पर यदि विषम आतङ्क का भाव अपना अधिकार जमा ले तो इस में कुछ विचित्रता नहीं। दोनों नेताओं ने सोचा कि यूरोपीय महासमर की उलझन के दिनों में भी—ऐसा बढ़िया सुभीता रहने पर भी-विप्लव

दल सारी तैयारी कर के कुछ भी नहीं कर सका। कौन जाने अब फिर कब ऐसा मौका मिलेगा!—किन्तु यह भयङ्कर चोट खाकर भी वे फिर कमर कस कर काम में लग गये। उन के हृदय की असीम आशा, हृदय का बल मानों घटना नहीं चाहता। इसी से वे फिर नये उत्साह से घोर अन्धकारावृत भारत-आकाश के एकान्त कोने में अपने वक्षःस्थल की दीप-शिखा के ही बल और भरोसे पर उस हताशाच्छन्न जीवन-मार्ग पर फिर आगे बढ़े। उन के दिल में बड़ी गहरी चोट लगी थी किन्तु इस से उन के हाथ-पैर नहीं फूल गये। इतने बड़े मानसिक बल की मर्यादा को समझने वाले हम में कितने मनुष्य हैं! वीर की इज्जत करना वीर ही जानता है, इसी से भारत के विप्लवकारी दल को अंगरेज़ जिस दृष्टि से देखते थे, या देखते हैं, उस दृष्टि से उस दल को कितने भारतवासी देख सकते हैं? भारतीय विप्लवपन्थी दल को भारत-वासियों ने सदा उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। यह लापरवाही भारतीय विप्लवकारी दल की छाती को, एक बड़ी वजनदार चट्टान की तरह, बड़ी बेदरदी से दबाया करती थी। उक्त दल की ऐसी अवज्ञा और किसी ने भी नहीं की। इस दल ने जिन से सब से अधिक सहानुभूति की आशा की उन्हीं ने उस की लानत-मलामत की है किन्तु इतने पर भी दल ने हिम्मत नहीं छोड़ी। इस दल वालों के प्राण मानों किसी स्वप्नलोक की कल्पना से भरपूर थे; अपने प्राणों की पूँजी के सिवा इन्हें और किसी का भरोसा न था—यह बलवे की तैयारी बेकार तो हो गई थी किन्तु सफलता निष्फलता की कसौटी से किसी भी आन्दोलन पर विचार करना ठीक नहीं। इस आन्दोलन पर विचार

करने के लिए यह देखना चाहिए कि इस आन्दोलन के पीछे कितने बड़े आदर्श की कल्पना थी और इस आदर्श को प्राप्त करने के लिए कितने व्यक्तियों ने प्राण की बाजी लगा कर कहाँ तक त्याग स्वीकार किया था। ऐसी ऐसी बातों पर ध्यान देकर ही इस आन्दोलन पर विचार किया जाना चाहिए। किस आदर्श की प्रेरणा से जागृत हो कर भारत के युवकों ने हथेली में जान लेकर यह खेल खेला और पंजाब में ग़दर का उद्योग निष्फल हो जाने के पश्चात् भारत के विप्लव-पन्थी दल का क्या स्वरूप हो गया था, तथा यूरोपीय महायुद्ध छिड़ने से पहले भारत में बलवा करने की इच्छा रखने वाला दल बलवे की कैसी क्या तैयारी कर रहा था, यह सब बातें इस पुस्तक के दूसरे भागों में विचार करने की इच्छा है।

[समाप्त]

हिन्दी भवन, लाहौर का संक्षिप्त सूचीपत्र

दम्पती परमर्श

दाम्पत्य विज्ञान (Sexual Science) सम्बन्धी पुस्तकों की संसार प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती मेरी स्टोप्स की प्रसिद्ध पुस्तक Radiant Motherhood का सरल हिन्दी अनुवाद। नव विवाहित दम्पतियों के लिए आवश्यक पुस्तक। इसमें 'प्रेमी की मधुर कल्पना' 'भावी माता की उलझनें और शारीरिक कष्ट' 'गर्भ और समागम' 'यन्त्रणा का द्वार' 'प्रसव और सौन्दर्य' इत्यादि २० महत्त्व पूर्ण विषयों पर वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। मूल पुस्तक के ४ वर्षों में ही १४ संस्करण हो चुके हैं। नमूने की एक सम्मति यहां दी जाती है।

'उन सैकड़ों स्त्रियों के लिए जो माता बनने वाली है, पर दाम्पत्य विज्ञान जिनके लिए एक गुप्त रहस्य है, तथा उन सैकड़ों नवयुवकों के लिए जो गृहस्थ-आश्रम में पग रखने वाले हैं, यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है।" मूल्य १।=) सजिल्द १।।=)।

प्रताप-प्रतिज्ञा

राष्ट्रीयभावों से ओतप्रोत मौलिक नाटक। लेखक श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रसिद्ध "विश्वभारती" के हिन्दी अध्यापक श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' मूल्य ।।=) सजिल्द १)।

वन्दी-जीवन

(ले० श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल)

इसमें सन् १९१५में समस्त उत्तर भारत में की गई गदरकी तैयारियों का पूरा वर्णन है मनोरञ्जकता में उपन्यास को और वीरता